साखी-सतसई

संपादक
वियोगी हरि

कुटीर-प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
कुटीर-प्रकाशन,
मॉडेल टाउन, दिल्ली

दूसरा संस्करण, १९७०
मूल्य
१.७५

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस
किंग्सवे, दिल्ली-९

दो शब्द

'साखी-सतसई' यह एक संग्रह है सात सौ साखियों का। ये साखियाँ संकलित की गई हैं कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, शेख फरीद, दादूदयाल, चरणदास आदि २३ संतों की अमृतरस-भरी बानियों से।

सतसई की परंपरा प्राचीन है। संस्कृत-साहित्य में गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्या-सप्तशती' और हिन्दी-साहित्य में 'बिहारी-सतसई' काफी प्रसिद्ध हैं। दूसरी भी कई सतसइयाँ हैं—अधिकतर शृंगाररस-प्रधान। एक-दो संकलित भी हैं। यह एक नया प्रयास है संतों की सात सौ 'साखियों' के संकलन का।

'संत-सुधा-सार' ग्रन्थ का संपादन करते समय मन में विचार आया था कि विविध अंगों अर्थात् विषयों के अनुसार विभिन्न संतों की चुनी हुई साखियों का अलग से क्यों न एक संकलन किया जाये। उसी विचार का यह कार्यान्वित रूप है।

सतसई में इन १९ अंगों अर्थात् विषयों की साखियाँ ली गई हैं:

गुरुदेव	मन
नाम-स्मरण	भ्रम-विध्वंस
प्रेम-रस	निंदा
विरह	चाणक
पतिव्रता	दया-निर्वैरता
साध	कथनी-करणी
शूरातन	समता
सांच	चेतावनी
वीनती	विविध उपदेश
माया	

कवियों का 'गागर में सागर भर देनेवाला' जो प्रिय छंद 'दोहा' है, उसीको संतों ने 'साखी' नाम दिया है, और सिक्ख-गुरुओं ने उसेही 'सलोक' (श्लोक) कहा है। साखी अर्थात् सत्य का साक्षीरूप उद्गार

किन्तु दोहे के रंग से साखी व सलोक का रंग निराला है, एक निराले ही ढंग से निखरा हुआ। दोहे के नपे-तुले चौखटे का बंधन किसी-किसी साखी ने लहर में आकर तोड़ दिया है। यह निश्छल स्वच्छन्दता भी उसकी प्यारी लगती है।

साखी की भाषा ने अंगराग भी अनोखा ही काम में लिया है, जो उसके निरावरण तन पर खूब फब उठा है।

रस का तो कहना ही क्या ! साखी का अद्भुत उँजेला पैठते ही अंतर की अँधेरी सूनी कोठरी ऐसे निर्मलतम रस से भर जाती है, जिसे परिभाषा की डोरी से लपेटना हास्यास्पद लगता है। हठपूर्वक खींच-खींचकर बिठाये हुए भड़कीले अलंकार दूर खड़े वहाँ विस्मित-से दीखते हैं। लगता है कि ऊँची उड़ान भरनेवाले और गूढ़ आशय रखनेवाले कितने ही 'प्रसिद्ध दोहे' शायद साखियों की पंक्ति में बैठकर लज्जा अनुभव करें। मन को एक क्षण के लिए चकृत कर देनेवाला शब्द तथा अर्थ का चमत्कार तो उनमें दीखता है, पर वहाँ 'साखी' की वह नित्यरसमयी सहज अभिव्यंजना कहाँ, जो अंतर पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है।

तब, कबीर, दादू आदि संतों की साखियों और गुरुओं और फरीद के सलोकों को पढ़िए, गाइए, सुनिए और गुनिए और झूलिए, झूमिए सहज-सहज सुरत के उल्लास-हिंडोले पर जीवन की सुहागभरी घड़ियों में।

केवल वैराग्य और ज्ञान-भक्ति की ही झलकें साखियाँ नहीं दिखाती हैं, शील-समाचारभी वे खूब लुटाती हैं, और कर्त्तव्य कर्मों की भी प्रेरणा देती हैं। साखियाँ ऐसा कुछ देती हैं, जिसे गँवाया नहीं जा सकेगा; पानेवाला जिसके साथ स्वतः तदाकार हो जायेगा। पर शर्त है कि, गहरे पानी में पैठना होगा; किनारे पर बैठे-बैठे वह वस्तु हाथ

नहीं लगेगी। मगर वैसे बैठना शायद बनेगा भी नहीं—कुछ तो ऐसी ज़बर्दस्त साखियाँ हैं, जो साधक को बरबस गहरे में खींच ले जायेंगी।

साखी के शब्द-तीर घाव नहीं करते, वे तो, उल्टे, गहरे-से-गहरे घाव को छूतेही भर देते हैं :

गति उलटी, अति अटपटी, यह साखी के तीर।
देखत में छोटे लगैं, भरैं घाव गंभीर॥

सचमुच, मोह-जनित दुःख के गंभीर घाव को साखी के यह तीर देखते-देखते भर देते हैं।

सात सौ की संख्या के अंदर साखियों का चुनाव करना बड़ा कठिन काम था। लोभ था कि सभी रत्नों को संचित कर लिया जाये, पर स्थान था बहुत सीमित। हठात् संतोष करना पड़ा।

संपादक ने कठिन शब्दों का अर्थ, और 'सलोकों' का भावार्थ भी दे दिया है अल्पमति के अनुसार। अर्थ कहीं-कहीं पर अयथार्थ भी हो सकता है।

वियोगी हरि

साखी-सूची

कबिरा सरीर सराय हैं, भाड़ा देके बस।
जब भठियारी खुस रहै, तब जीवन का रस।।

लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

'दादू' पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ।।

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

हरष सोग जाके नहीं, बैरी मीत समान।
कहु नानक, सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि।।

बारबार नहिं पाइये, 'सुन्दर' मनुषा-देह।
राम-भजन, सेवा, सुकृत, यह सौदो करि लेह।।

नामरदां भोगी नहीं, मरद गये करि त्याग।
'रज्जब' रिधि क्वांरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग।।

गुरुदेव का अंग

कबीरदास

राम नाम कै पटतरैं, देवै को कुछ नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि ॥१॥
चौसठ दीया जोइ भरि, चौदह चंदा माँहि।
तिंहि घरि किसको चानिणौं, जिहि घरि गोंबिद नाँहि ॥२॥
गुरु गोंबिद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥३॥
पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥४॥
गुरु गोंबिद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोंबिद दियो बताय ॥५॥
कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहीं ठौर ॥६॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अंमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥७॥

---

१. पटतरैं=तुलना, उपमा। हौंस=साहसरूपी इच्छा, हौसला।
२. चानिणौं=चाँदनी, उँजेला।
३. आप मेट जीवत मरे=अहंभाव को नष्टकर देहभाव को भूल जाये।
४. सारी=चौपड़।
५. बेलरी=लता।

गुरु अंगद

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ।
एते चानण होंदिश्राँ गुर बिनु घोर अंधार ॥१॥

१. यदि सौ चन्द्र उदय हों, और हजार सूरज भी आकाश पर चढ़ जायें, तो भी इतने (प्रचंड) प्रकाश (पुञ्ज) में भी बिना गुरु के घोर अंधकार ही छाया रहेगा ।

गुरु अमरदास

जिन्हां सतिगुर इकमनि सेविश्रा तिन जन लागौ पाइ ।
गुर सबदी हरि मन बसै माया की भुख जाइ ॥१॥
सतिगुर की सेवा चाकरी सुखी हूं सुख सारु ।
ऐथै मिलनि वड़िआईआ दरगह मोख दुआरु ॥२॥

१. जिन्हां=जिन्होंने । इकमनि=अनंन्य भाव से । लागौपाइ=उनके पैर पड़ता हूँ । गुरसबदी=गुरु के उपदेश से । भुख=तृष्णा, आसक्ति ।
२. ऐथै=इस लोक में । दरगह=परलोक, ईश्वर का दरबार । मोख=मोक्ष ।

गुरु रामदास

बड़भागिया सोहागणी जिन्हां गुरमुखि मिलिआ हरिराइ ।
अन्तर जोति परगासिया नानक नामि समाइ ॥१॥
वाहु वाहु सतिगुरु सतिपुरख है, जिसनों सिमरतु सभ कोई ।
वाहुवाहु सतिगुरु निरवैरु है, जिसु निंदा उसतति तुलि होइ ॥२॥

१. जिसकों=जिसको । सिमरतु=स्मरण करते हैं । उसतति=स्तुति, प्रशंसा । तुलि=तुल्य, समान ।

वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है, जिसु अंतरि ब्रह्मु विचारु ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरंकारु है, जिसु अंतु न पारावारु ॥३॥
बड़भागी हरि पाइआ, पूरन परमानन्दु ।
जन नानक नामु सलाहिआ, बहुड़ि न मनि तनि भंगु ॥४॥
गुरमुखि सची आसकी जितु प्रीतमु सचा पाईऐ ।
अनदिनु रहहि अनंदि नानक सहजि समाईऐ ॥५॥
सचा प्रेम पिआरु गुर पूरे ते पाइए ।
कबहू न होवै भंगु नानक हरिगुण गाइए ॥६॥

---

४. सलाहिआ=सराहना या स्तुति की । बहुड़ि=फिर । न मनि तनि भंगु=मन और तन से विलग नहीं होता ।
५. आसकी=प्रीति । अनदिनु=नित्य, निरन्तर ।

दादू दयाल

दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥१॥
सबद दूध घृत रामरस, कोइ साध बिलोवणहार ।
दादू अंमृत काढिले, गुरमुखि गहै बिचार ॥२॥
घीव दूध मैं रमि रह्या, व्यापक सबही ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥३॥
मानसरोवर माँहि जल, प्यासा पीवै आइ ।
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥४॥

---

२. बिलोवणहार=मंथन अर्थात् तत्व-विचार करनेवाला ।
४. माँहि=मध्य में, अन्दर उतर या डूबकर ।

देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार ।
दादू सांधै सुरति कूँ, सो गुर पीर हमार ।।५।।
दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ।।६।।
गुर पहली मन सौं कहै, पीछै नैन की सैंन ।
दादू सिख समझै नहीं कहि समझावै बैन ।।७।।
कहैं लखै सो मानवी, सैंन लखै सो साध ।
मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ।।८।।

---

५. किरका=एक कण। दरद=परमात्मा के आत्यंतिक विरह की वेदना से आशय है ।

६. मसीति=मसजिद । देहुरा=देवालय ।

७. पहली=पहले तो । सैंन=संकेत ।

८. लखै=समझले । मानवी=मनुष्य ।

रज्जब

रज्जब कूँ अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार ।
दुख दरिद्र तबका गया, सुख संपत्ति अपार ।।१।।
गुरु दीरघ गोबिन्द सूँ, सारै सिष्य सुकाज ।
रज्जब मक्का बड़ा, परि पहुँचै बैठि जहाज ।।२।।
कामधेनु गुरु क्या कहै, जो सिष निःकामी होइ ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मँदभागी सिष जोइ ।।३।।

---

१. अज्जब=अजब, अलौकिक । दातार=दाता ।

२. सारै=पूरा करता है ।

३. निःकामी=यहाँ निकम्मा से आशय है । रीता=खाली, ज्ञानशून्य ।

सिला सँवारी राजनैं, ताहि नवैं सबकोइ।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ ॥४॥
गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटीरूप।
रज्जब रज सूँ फेरिकै घड़िले कुम्भ अनूप ॥५॥
बिरहिण बिहरै रैनदिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार ॥६॥
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालैं देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि बरसहु मोहन मेह ॥७॥

४. सिला सँवारी राजनैं=कारीगर ने पत्थर से मूर्ति तैयार की। पूजि= पूज्य।
५. परजापती=प्रजापति, कुम्हार। रज=मिट्टी।
६. बिहरै=बिछोह में तड़पती है।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुध बुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान ॥१॥
सतगुरु सब्दाँ मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषद दे हरिनाम का तनमन किया निरोग ॥२॥
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय ॥३॥
जैसे सतगुरु तुम करी, मुझसे कछू न होय।
विष-भाँडे विष काढ़कर, दिया अमीरस मोय ॥४॥

१. सुजान=ज्ञानवान्।
२. सब्दाँ=शब्दों से, उपदेशों से। सोग=शोक।
३. रंजी=रज, धूल। सास्तर=शास्त्र।
४. दिया मोय=भर दिया।

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अँदेसा मोहि ।
सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीनीं खोहि ॥५॥

५. अँदेसा=डर, संशय । दीनीं खोहि=खोलदी ।

चरणदास

सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छांहि ।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहि ॥१॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावँ ।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावँ ॥२॥
जाति बरन कुल मन गया, गया देह-अभिमान ।
अपने मुखसूँ क्या कहूँ, जग ही करै बखान ॥३॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट ॥४॥
सतगुरु शब्दी तेग है, लागत दो करि देहि ।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि ॥५॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद ।
बेदरदी समझै नहीं, बिरही पावै भेद ॥६॥

१. पलक=नजर से । चरनोदक ले जाहि=अब लोग मेरे पैरों का धोवन ले जाते हैं ।

२. सदके=बलिहारी । ठावँ=जीव का निजस्थान, ब्रह्म-पद ।

४. भ्रम्म=भ्रम, अविद्या ।

५. दो करि देहि=दो टुकड़े कर देती है । भजै=भाग जाती है । सूरा सनमुख लेहि=शूरवीर वार को सामने लेता है ।

६. बेदरदी=दरद के भेद को न जाननेवाला; अनधिकारी । भेद=मर्म, रहस्य

सतगुरु शब्दी बान है, अंग अंग डारे तोड़ ।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टाँका लगै न जोड़ ॥७॥
ऐसी मारी खैंचकर, लगी वार गई पार ।
जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार ॥८॥
बचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग ।
इन्द्र कि पदवी लौं उन्हें, चरनदास सब रोग ॥९॥

८. आपा=अहंता, खुदी । ततसार=तदाकार, ब्रह्मरूप ।

सहजो बाई

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय ।
धरती का कागद करूँ, गुरु-अस्तुति न समाय ॥१॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतमरूप ।
तिमिर गयौ चाँदन भयौ, पायौ परघट भूप ॥२॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेट्यौ मन सन्देह ।
रोम-रोम सूँ प्रेम उठि, भीज गई सब देह ॥३॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूँद लिये दोउ नैन ।
फिर मोसूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन ॥४॥
चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय ।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥५॥
सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
तार सकै नहिं एककँ, गहैं बहुत की बाँहि ॥६॥

१. न समाय=पूरी नहीं लिखी जा सकती ।
२. परघट= प्रकट । भूप=परमात्मा से अभिप्राय है ।
४. सैन=संकेत; ध्यान में लव लगाकर निजरूप देखने की ओर इशारा

सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूं रंग देत।
जैसा तैसा बसन ह्वै, जो कोई आवै सेत ॥७॥

७. सेत=शुद्ध, निर्मल।

दयाबाई

चरनदास गुरुदेवजू, ब्रह्मरूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन, दया करत परनाम ॥१॥
अंधकूप जग में पड़ी, दया करम-बस आय।
बूड़त लई निकासि करि, गुरु-गुन-ज्ञान गहाय ॥२॥
सतगुरु ब्रह्मसरूप हैं, मनुषभाव मत जान।
देहभाव मानैं दया, ते हैं पसू समान ॥३॥

२. गहाय=ग्रहण कराकर, सौंपकर।

नाम-स्मरण का अंग

कबीरदास

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि ।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥१॥
राम पियारा छाड़िकरि, करै आन का जाप ।
बेस्वा केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप ॥२॥
सुमिरन सुरत लगाइके मुख तें कछू न बोल ।
बाहर के पट देइके अन्तर के पट खोल ॥३॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मनका डारिदे, मन का मनका फेर ॥४॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि ।
मनुवां तो दहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि ॥५॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥६॥

---

१. रामहिं आहि=राम के ही लिए है ।

२. बेस्वा=वेश्या ।

४. फेर=(१)भेद, द्वैतभाव (२) माला जपना । मनका=गुरिया, सुमिरनी का दाना ।

५. दहुँदिसि=दशों दिशाओं में चंचलतावश ।

६. वारी=बलिहारी, कुर्बान हूँ ।

रैदास

हरि-सा हीरा छाँड़िकै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥१॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजू सुमिरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद ॥२॥

---

२. प्रतिवाद=बकवास।

गुरु नानकदेव

जिनी नाम धिआइआ गए मसक्कति घालि।
नानक ते मुख उज्जले केती छुट्टी नालि ॥१॥

---

१. जिन्होंने नाम का अभ्यास किया है, वे अपना श्रम सफल कर गये। नानक! उनके मुख प्रकाशमान हैं; उनके सत्संग से कितने ही लोग (भव-बंधन से) मुक्त हो गये।

गुरु अंगद

जा सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालि ओइ।
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ ॥१॥

---

१. जिसका नाम तू सुख में याद करता है, दुःख में भी उसे ही याद कर। नानक कहता है, हे सयानी! इसी तरह स्वामी से तेरा मिलन होगा।

गुरु तेगबहादुर

गुन गोबिंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जल कौ मीन ॥१॥

बिखिअन सिउ काहे रचिओ, निमिख न होहि उदास ।
कहु नानक भजु हरि मना, परै न जम की फाँस ।।२।।
तरुनापो योंही गइओ, लिइओ जरा तनु जीति ।
कहु नानक भजु हरि मना, अउधि जाति है बीति ।।३।।
बिरध भइओ सूझै नहीं, काल पहूँचिओ आन ।
कहु नानक नर बावरे, किउ न भजै भगवान ।।४।।
सभ सुखदाता रामु है, दूसर नाहिन कोइ ।
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरत गति होइ ।।५।।
जिह सिमरत गति पाइए, तिहि भजु रे तैं मीत ।
कहु नानक सुन रे मना, अउधि घटति है नीत ।।६।।
घटि घटि में हरिजू बसै, संतन कहिओ पुकारि ।
कहु नानक तिह भजु मना, भउनिधि उतरहि पारि ।।७।।

---

३. तरुनापो=तरुणाई, जवानी । जरा=बुढ़ापा । अउधि=अवधि, आयु ।

४. बिरध=वृद्ध ।

५. गति=सद्गति, मुक्ति ।

६. नीत=नित्य ।

७. भउनिधि=संसार-समुद्र ।

बषना

रामनाम जिन ओषदी, सतगुर दई बताइ ।
ओषदि खाइ र पछि रहै, बषना वेदन जाइ ।।१।।
पछि पांणी राखै नहीं, जो भावै सो खाइ ।
तो ओषदि गुण नां करै, बषना व्याधि न जाइ ।।२।।

---

१. ओषदी=औषध, दवा । पछि=पथ्य । वेदन=पीड़ा, रोग ।

ईहि औषद तें साध सब, अनत उधारी देह।
कोइ कुपछ का फेर है, नहीं त औषद येह ॥३॥

३. कुपछ=कुपथ्य। फेर=अंतर, भूल।

सुन्दरदास

सुन्दर सदगुरु यौं कह्या, सकल-सिरोमनि नाम।
ताकौं निसदिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम ॥१॥
राम नाम बिन लैन कौं, और वस्तु कहि कौन।
सुन्दर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन ॥२॥
राम-नाम-पीयूष तजि, विष पीवै मतिहीन।
सुन्दर डोलै भटकते, जन जन आगे दीन ॥३॥
सुमिरन ही मैं शील है, सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये, सुन्दर जीवन-मोष ॥४॥

३. पीयूष=अमृत। विष=विषयरूपी विष।
४. मोष=मोक्ष।

मलूकदास

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥१॥
धर्महिं का सौदा भला, दाया जग ब्योहार।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ॥२॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतर्जामी जानिहै, अन्तरगत का भाव ॥३॥

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥४॥

४. बिसराम=विश्राम, छुट्टी।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ॥१॥
मुसलमान हिन्दू कहा, षट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव ॥२॥
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसैं ता माहिं ॥३॥
दरिया सुमिरन राम का, देखत-भूली खेल।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल ॥४॥
फिरी दुहाई सहर में, चोर गये सब भाज।
सत्रु फिरा मित्र जु भया, हुआ राम का राज ॥५॥

१. किरिया=क्रिया, कर्मकाण्ड।
२. षटदरसन=छह शास्त्र।
३. घट=शरीर। सारिखा=समान।
४. देखत-भूली=भूल-भुलैया। लीयामेल=प्रेम किया।
५. दुहाई=ढिंढोरा, घोषणा।

सहजोबाई

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥१॥

१. सकै नहीं पाय=किसीको पता न चले।

राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना संसार ॥२॥
कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माँहि अनीति ॥३॥

---

३. भिष्टल=भ्रष्ट। अनीति=बुरी वासना।

दयाबाई

हरि भजते लागै नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।
तातें राम सँभालिये, दया छोड़ जग-जाल ॥१॥
जे जन हरि-सुमिरन-बिमुख, तासूँ मुखहुँ न बोल।
रामस्वरूप में जे पगे, तासूँ अन्तर खोल ॥२॥
रामनाम के लेतहीं, पातक झुरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम की, राखो मन में टेक ॥३॥
नारायण के नाम बिन, नर नर नर जा चित्त।
दीन भयो बिल्लात है, माया-बसि ना थित्त ॥४॥

---

१. झाल=ज्वाला। सँभालिये=स्मरण व सेवा करे।
२. अन्तर खोल=हृदय की गुप्त-से-गुप्त बात स्पष्ट बतला दे।
३. झुरैं=जल जाते हैं।
४. नर नर नर जा चित्त=जिसके चित्त में मनुष्य ही सम्बन्धी विचार चक्कर लगाते रहते हैं। बिल्लात है=आशा के वश गिड़गिड़ाता है। थित्त=स्थित, स्थिर।

प्रेम-रस का अंग

कबीरदास

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥
अंक भरे भरि भेंटिया, मन मैं नांहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जबलग दोइ सरीर ॥२॥
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ ॥३॥
सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥४॥
पंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥५॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गंभीर।
चहुँदिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥६॥
नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेऊँ।
ना हौं देखौं औरकूं, ना तुझ देखन देऊँ ॥७॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥८॥

---

१. थाकि=अतृप्ति, भूख।
३. भाठी=शराब की भट्टी या दूकान।
५. सूती=सोई।
७. झंपेउँ=मूंदलूं।

शेख फरीद

ढूंढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर।
जिन्हां नाउ सुहागणी तिना झाक न होर ॥१॥

१. तू अपने सुहाग को, अपने प्रीतम को खोज रही है, तो तेरे अन्दर ज़रूर कोई-न-कोई कमी है;
जिसे सुहागिन कहते हैं वह किसी और की तरफ झाँकती भी नहीं।

दादूदयाल

दादू प्याला नूर दा, आसिक अरसि पीवंति।
अठे पहर अल्लाह दा, मुँह दिट्ठे जीवंति ॥१॥
प्रेम-लहरि की पालकी, आतम बैसै आइ।
दादू खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ ॥२॥
दादू दया दयाल की, सो क्यों छानी होइ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥३॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृपित न होइ ॥४॥
चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहिं जाइ।
ऐसा वासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥५॥

१. नूरदा=परम प्रकाशमय (पंजाबी विभक्ति का प्रयोग) मुँह दिट्ठे= मुख देखता हुआ।
२. बैसै=बैठती है।
३. छानी=छिपी हुई, गुप्त। मुलकत रहै=मुस्कराती रहती है।
४. रसना=जिह्वा।
५. चंच=चोंच। वासण=बर्तन।

सहजोबाई

प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप ॥१॥
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥२॥
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ैं कितकै किती, हरि सम्हाल सब लेह ॥३॥

---

२. गये सब फूट=छोड़-छोड़कर अलग हो गये।
३. कितकै किती=कहीं के कहीं।

दयाबाई

प्रेम-मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात ॥१॥
हरिरस-माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध ॥२॥
कहूँ धरत पग परत कहुँ, उमगि गात सब देह।
दया मगन हरिरूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥३॥

विरह का अंग

कबीरदास

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या ।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचु पाऊँ नहीं ।।१।।
बिरह-भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ ।
राम-बिवोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ।।२।।
सब रग तंत रवाब तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै सांई कै चित्त ।।३।।
अंषणियां झांई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि ।।४।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ।।५।।
कै बिरहिन कूँ मीच दै, कै आपहिं दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ।।६।।
बिरह भुवंगम पैठिकै, किया कलेजे घाव ।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ।।७।।

---

१. सरि=सद्गुरु के शब्द-वाण से आशय है । सचु=चैन ।

२. बिवोगी=वियोगी ।

३. तंत=तार । रवाब=एक प्रकार का बाजा, इसरार ।

४. झांई=अँधेरा ।

६. दाझणां=जलना ।

बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुंधआय ।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सगरी जरि जाय ॥८॥
हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय ।
जाके लागी सो लखै, की जिन लागी सोय ॥९॥
कबिरा बैद बुलाइया, पकरिके देखी बाँहि ।
बैद न वेदन जानई, करक कलेजे माँहि ॥१०॥

८. ओदी=गीली । सपचै=सुलगे ।
९. दव=आग । लागी=(१) लगी है (२) लगाई है ।

गुरु अर्जुनदेव

तू चउ सजण मैंडिआ देई सीसु उतारि ।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु ॥१॥
नीहु महिंजा तऊ नालि बिआ नेह कूड़ावै डेखु ।
कपड़ भोग डरावणे जिचरु पिरी न डेखु ॥२॥
उठी झालू कंतड़े हउ पसी तउ दीदारु ।
काजल हारु तमोल रसु बिनु पसे सभि रस छारु ॥३॥
पहिला मरण कबूलि करि जीवण की छाड़ि आस ।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास ॥४॥

१. अय मेरे साजन ! अगर तू कहे, तो मैं अपना सिर उतारकर तुझे देदूं । आँखें तसरती हैं कि कब तुझे देखूं ।
२. मेरी प्रीति तेरे ही साथ है; मैंने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है । तुझे देखे बिना ये वस्त्र और ये भोग मुझे डरावने लगते हैं ।
३. मेरे प्यारे! तेरे दर्शन के लिए मैं बड़ी भोर उठ जाती हूँ । काजल, हार और पान और सारे मधुर रस,बिना तेरे दर्शन के धूल की तरह लगतेहैं ।
४. कबूलि करि=स्वीकार करले । छड़ि=छोड़कर । रेणुका=पैरों की धूल; अत्यन्त तुच्छ ।

जिसु मनि बसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर।
भुख तिख तिसु न विआपई जमु नहीं आवै नीर ॥५॥
धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले।
धूड़ी बिचि लुडंदड़ी साहां नानक तै सह नाले ॥६॥

---

५. पीर=दुःख। तिख=तृषा, प्यास। जमु=काल। नीर=निकट।

६. मेरा प्रीतम मेरे पास नहीं, तो इन रेशमी वस्त्रों को लेकर क्या करूँगी, मैं तो इनमें आग लगा दूंगी;
प्यारे, तेरे साथ धूल में लोटती हुई भी मैं सुन्दर दीखूंगी।

शेख फरीद

फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि ऊठनि पास।
धिगु तिन्हादा जीविआ जिन्हा बिडाणी आस ॥१॥
फरीदा गलीए चिकड़्डु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु।
चला त भीजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥२॥
भिजउ लिजउ कंबली अलपह वासहु मेहु।
जाइ मिला तिन्हा सजणा तुटउ नाही नेहु ॥३॥

---

१. फरीद, रातें लंबी हो गईं; पसलियों में हूक उठ रही हैं——दर्द से करवटें बदलनी पड़ रही हैं;
धिक्कार है उन्हें, जिनको कि पराई आशा है।

२. फरीद, गलियों में कीचड़-ही-कीचड़ है; और, प्यारे का घर, जिससे कि मैंने प्रीति जोड़ी है, दूर है;
अगर मैं उसके पास जाऊँ तो मेरी कंबली भीग जायेगी, और मैं अपने घर रहूँ तो मेरी प्रीति टूट जायेगी।

३. अल्लाह, भलेही तू मेह बरसाये, और मेरी कंबली को भिगो-भिगोकर तर करदे, फिर भी अपने प्यारे साजन से मेरा मिलना होकर ही रहेगा, ताकि हमारी प्रीति न टूटे।

तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि ।
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूँ पिरी मिलंन्हि ।। ४।।
कागा करंग ढढोलिआ सगल खाइआ मासु ।
ए दुइ नैना मति छुइउ पिर देखन की आसु ।।५।।

४. शरीर तेरा तंदूर की तरह तप रहा है; मेरी हड्डियाँ ईंधन की लकड़ी की तरह जल रही हैं;

मेरे पैर अगर थक जायें, तोभी मैं अपने प्रीतम से मिलने सिर के बल चलकर जाऊँगी।

५. कौवो ! तुमने मेरी ठठरी का खोज-खोजकर सारा मांस खा डाला; पर इन दो नयनों को चोंच न लगाना, क्योंकि मुझे अबभी अपने प्रीतम के देखने की आस है।

दादूदयाल

रतिवंती आरति करै, रांम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ।।१।।
सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी।
तुंहीं तुंहीं निसदिन करौं, बिरहा की जारी ।।२।।
दादू इस संसार में, मुझसा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणैं, मैं जग भरिया रोइ ।।३।।
श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ।।४।।

१. रतिवंती=प्रेमपरा भक्ति में तन्मय जीवात्मा से आशय है। आरति= आर्ति, वेदनापूर्वक याचना।

२. ऊजला=उज्ज्वल, पवित्र।

४. राते=अनुरक्त। त्यौं दादू एक अनेक=वैसे ही दादू उस एक अद्वितीय अनुपम परमात्मा के प्रेम में रंग गया है।

दादू इस हिवड़े ये साल, पिव पिव क्योंहि न जाइसी ।
जब देखौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी ॥५॥
गई दसा तब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥६॥
दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥७॥
ग्यान ध्यान सब छाड़िदे, जप तप साधन जोग ।
दादू बिरहा लै रहै, छाड़ि सकल रसभोग ॥८॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोहि ।
कोइ कहौ मेरे पीवकों, कब मुख देखौं तोहि ॥९॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥१०॥
अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार ।
दादू सो क्योंकरि लहैं, साहिब का दीदार ॥११॥
मनहीं मांहे झूरणा, रोवै मनहीं मांहि ।
मनहीं मांहै धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥१२॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ॥१३॥

---

५. हिवड़े=हृदय में । साल=पीड़ा, वेदना । क्योंहि न जाइसी=किसी भी तरह नहीं जायगी । आइसी=आयगी, मिलेगी ।

६. बाहुड़ै=लौट आयेगी ।

७. अरवाह=रूहें, जीवात्माएँ ।

९. सालै=कसकता है ।

१२. झूरणा=जलना ।

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नांहि ॥१४॥
राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहि ॥१५॥
जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम ॥१६॥
दादू प्रीतम के पग परसिये, मुख देखण का चाव।
तहाँ ले सीस नवाइये, जहाँ धरे थे पाव ॥१७॥

रज्जब

बिरहिण बिहरै रैनदिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार ॥१॥
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालैं देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहु मोहन मेह ॥२॥
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
रज्जब तलफै तबलगैं, मिलै न मारनहार ॥३॥
जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार।
त्यूँ रज्जब भूल्या सकल, सुनि सनेह दिलदार ॥४॥
रज्जब ज्वाला बिरह की, कबहूँ प्रगटै मांहि।
तौ सींचनि घृत सों चहौं, करम-काठ जरि जांहि ॥५॥
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
रज्जब बिरह बिवोग बिन, कहाँ मिलै सो पीव ॥६॥

---

१. बिहरै=बिछोह में तड़पती है।
४. भलका=भाला। सुमार=बिस्मार।
५. मांहि=मन्दिर में।
६. बिवोग=वियोग।

बषना

चकोर अंगारे क्यूँ चुगे, चुगि देह जरावै ।
कहि बषना किहिं कारणैं, कोई मरम लखावै ॥१॥
स्यौ बिभूति कबहूँ करै, लावै उस ठांई ।
बषना मस्तक चन्द है, मिलि वाकै तांई ॥२॥

२. स्यौ=शिव। बिभूति=भस्म। वाकै तांई=उस (चन्द्र) के साथ।

सुन्दरदास

सुन्दर बिरहनि मरि रही, कहूँ न पइये जीव ।
अंमृत पान कराइकै, फेरि जिवावै पीव ॥१॥
बिरह-बघूरा लै गयौ, चित्तहिं कहूँ उड़ाइ ।
सुन्दर आवै ठौर तब, पीय मिलैं जब आइ ॥२॥
सुन्दर बिरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ ।
जरिबरिकैं भस्मी भई, धुवाँ न निकसैं कोइ ॥३॥
सब कोई रलियाँ करैं, आयौ सरस बसंत ।
सुन्दर बिरहनि अनमनी, जाको घर नहिं कंत ॥४॥
साईं तूँ ही तूँ करौं, क्यौंही दरस दिखाव ।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, ज्यौंही त्यौंही आव ॥५॥
जिस विधि पीव रिझाइये, सो विधि जानी नांहि ।
जोवन जाइ उतावला, सुन्दर यहु दुख मांहि ॥६॥

२. बघूरा=बवंडर। ठौर=अपना स्थान; शान्ति-पद।
४. रलियाँ=रंगरेलियाँ, मौज। अनमनी=उदास।
५. क्यौंही=किसीभी तरह। ज्यौं ही त्यौं ही=कैसेभी हो।
६. जाइ उतावला=बड़ी जल्दी-जल्दी भाग रहा है। मांहि=मन में।

लालन मेरा लाड़िला, रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुन्दर राखै नैन मैं, पलक उघारै नांहिं ॥७॥
सुन्दर बिगसै बिरहनी, मन मैं भया उछाह।
फूल बिछाऊँ सेजरी, आज पधारै नाह ॥८॥

७. पलक उघारै नांहिं=पलक इसलिए नहीं खोलती, कि कहीं आँखों के अन्दर से निकलकर भाग न जाये।

८. बिगसै=प्रफुल्लित होती है। नाह=स्वामी।

चरणदास

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय।
सोइ छका हरि-रस-पगा, वा पग परसौ धाय ॥१॥
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलै तौ जीवना, नहीं तौ छूटै प्रान ॥२॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोई भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद ॥३॥

१. छका=मस्त। पगा=लीन, रँगा हुआ।

३. भेद=मर्म।

दयाबाई

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर।
पै हरिरस-चसको दया, सहै कठिन तन पीर ॥१॥
विरह-ज्वाल उपजी हिये, राम-सनेही आय।
मन-मोहन मोहना सरल, तुम देखन दा चाय ॥२॥

१. चसको=चसका, मजा।

२. दा=का (पंजाबी प्रयोग)। चाय=चाह, लालसा।

काग उड़ावत थके कर, नैन निहारत बाट ।
प्रेमसिन्ध में पर्‌यो मन, ना निकसन को घाट ॥३॥
रे मन, तू निकसत नहीं, है तू बड़ा कठोर ।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, क्यों जीवत निस-भोर ॥४॥

---

४. भोर=दिन ।

साध का अंग

कबीरदास

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जाहिं ॥१॥
सिहों के लेंहडे नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात ॥२॥
साध कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥३॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥४॥
बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचैं नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥५॥
जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥६॥
हद्द चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ता का मता अगाध ॥७॥
संत न छाड़ैं संतई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥८॥

---

२. लेंहड़े=झुंड।
४. खेह=धूल।
५. संचैं=जमा करती हैं।
७. मानवा=मनुष्य।

दादूदयाल

दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांहीं और।
कहौ कहाँधौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥१॥
पतिब्रता गृह आपणैं, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौंही रहै, आग्याकारी टेव ॥२॥
दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥३॥
परपुरिखा सब परिहरै, सुन्दरि देखै जागि।
आपण पीव पिछाणकरि, दादू रहिये लागि ॥४॥
आन पुरिख हूँ बहनड़ी, परम पुरखि भर्त्तार।
हूँ अबला समझौं नहीं, तूँ जाणैं कर्त्तार ॥५॥
दादू सारौं सौं दिल तोरिकरि, सांई सौं जोरै।
सांई सेती जोड़िकरि, काहेकौं तोरै ॥६॥
करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक।
अति आनन्द बिभचारिणी, जाकै खसम अनेक ॥७॥
साहिब का दर छाड़िकरि, सेवग कहीं न जाइ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाइ ॥८॥

---

२. टेव=स्वभाव।

३. सेवा सारी होइ=यदि सेवा अच्छी हो। रूप······धोइ=केवल सुन्दर रूप का आदर नहीं किया जाता।

४. परिहरै=छोड़दे। रहिये लागि=प्रीति जोड़ कर चिपट रहे।

५. बहनड़ी=बहन। भर्त्तार=स्वामी।

६. तबलगै=तबतक। परसै=प्रीति करे।

७. करामाति=चमत्कार। आनन्द=संसारी विषय-सुख।

चरणदास

पतिव्रता वहि जानिये, आग्या करै न भंग।
पिय अपने के रंग-रतै, और न सोहै ढंग ॥१॥
अपने पिय कूँ सेइये, आनपुरुष तजि देह।
परघर नेह निवारिये, रहिये अपने गेह ॥२॥
आग्याकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजौ रंग ॥३॥
रंग होय तौ पीव को, आनपुरुष विषरूप।
छाँह बुरी परघरन की, अपनी भली जु धूप ॥४॥
अपने घर का दुख भला, परघर का सुख छार।
ऐसे जानै कुलबधू, सो सतवन्ती नार ॥५॥
पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम।
सबै देवता छाँडिकैं, जपिये हरि का नाम ॥६॥
खसम तुम्हारे राम हैं, इत उत रुख मत मारि।
चरनदास यों कहत है, यही धारना धारि ॥७॥

५. छार=धूल के समान तुच्छ। सतवंती=सती, पतिव्रता।
७. रुख मत मारि=मन मत डिगा।

पतिव्रता का अंग

कबीरदास

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौं, बहु गुणिवाले कंत।
जै हँसि बोलौं और सौं, तौ नील रँगाऊँ दंत ॥१॥
नैनां अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेऊँ।
ना हौं देखौं औरकूँ, ना तुझ देखन देऊँ ॥२॥
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥३॥
मन प्रतीति न प्रेमरस, ना इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूँ, कैसें रहसी रंग ॥४॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥५॥
पतिबरता पति कों भजै, और न आन सुहाय।
सिंह-बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥६॥
पतिब्रता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि-ससि की जोत ॥७॥
सती बिचारी सत किया, कांटों सेज बिछाय।
लै सूती पिया आपना, चहुँदिस अगिन लगाय ॥८॥

---

१. नील रँगाऊँ दंत = मुँह काला करू, अपने आपको कलंक लगाऊँ।
२. झँपेउँ = मूँदलूँ।
४. कैसे रहसी रंग = कैसे प्रेम रहेगा या मिलेगा।
५. कुचिल = मैले वस्त्रवाली।
६. बचा = बच्चा। लंघना = भूखा।

कबीर हरि का भावता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥९॥
कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर तास।
रैंणि न आवै नींदडी, अंगि न चढ़ई मांस ॥१०॥

९. दीसंत=दीखता है; पहचान लिया जाता है। षीणां=क्षीण, कृश। उनमनां=उदासीन, अनासक्त। रूठड़ा=विरक्त।
१०. पंजर=देह।

शेखफरीद

मति होदी होइ इआणा, ताण होदे होइ निताणा।
अणहोदे आपु वंडाए, कोई ऐसा भगतु सदाए॥

प्रभु के ऐसे बिरले ही भक्त हैं,—
जो, बुद्धिमान होते हुए भी, सरल हैं,
जो, बलवान होते हुए भी, निर्बल हैं,
और, जो अकिंचन होते हुए भी, अपना सर्वस्व दे डालते हैं।

दादू दयाल

साध-नदी, जल रामरस, तहाँ पखालै अंग।
दादू निर्मल, मल गया, साधूजन के संग ॥१॥
दादू पाया प्रेमरस, साधू-संगति माँहि।
फिरि फिरि देखै लोक सब, यहु रस कतहूँ नाँहि ॥२॥
दादू चन्दन कदि कह्या, अपना प्रेमप्रकास।
दस दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गन्ध सुबास ॥३॥

१. पखालैं=पखारे, धोये, निर्मल करे।
३. कदि=कब। दह=दस।

दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ।।४।।
परउपगारी सन्त सब, आये इहि कलि माँहि।
पिवैं पिलावैं रामरस, आप सवारथ नाँहि ।।५।।
चन्द सूर पावक पवन, पाणी का मत सार।
धरती अम्बर रातदिन, तरवर फलैं अपार ।।६।।
दादू इस संसार में, ये द्वै रतन अमोल।
इक साँईं अरु संतजन, इनका मोल न तोल ।।७।।
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ।
दादू पंक परसैं नहीं, कर्म न लागे कोइ ।।८।।
को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार।
दादू उसको पूछिये, प्रीतम के समाचार ।।९।।
सबही मृत्तक ह्वै रहे, जीवैं कौन उपाइ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचैं आइ ।।१०।।
हरिजल बरिखे, बाहिरा, सूके काया खेत।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ।।११।।

---

५. सवारथ=स्वार्थ।

६. चन्द·····अपार=चन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी, आकाश और वृक्ष सदा दूसरों के लिए ही अपनी अखूट सम्पत्ति लुटाते रहते हैं—अथवा, 'परोपकाराय सतां विभूतय:'।

८. संजमि=संयमी, निर्मल। पंक=कर्म की आसक्ति से आशय है।

११. हरिजल·····सचेत=यदि सींचनेवाला साधक सचेत हो, तो हरिजल के बरसते ही जिन कायारूपी खेतों को काम-क्रोध के उष्ण वायु ने सुखा दिया था, वे हरे हो जायेंगे।

विष का अंमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥१२॥
दादू ऊरा पूरा करि लिया, खारा मीठा होइ ।
फूठा सारा करि लिया, साध बमेकी सोइ ॥१३॥

---

१२. बिनाणी=विज्ञानी ।

१३. ऊरा=अधूरा । सारा=साबत, अखण्ड । बमेकी=विवेकी ।

गुरु तेगबहादुर

सुख दुख जिह परसै नहीं, लोभ मोह अभिमानु ।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान ॥१॥
उसतति निंदा नांहि जिहि, कंचन लोह समान ।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥२॥
हरष सोग जाके नहीं, बैरी मीत समान ।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥३॥
भै काहूकउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि ।
कहु नानक सुन रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥४॥
जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइयो उदास ।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रह्म-निवास ॥५॥

---

१. परसै नहीं=छू भी नहीं गया ।

२. उसतति=स्तुति, प्रशंसा । मुकत=जीवन्मुक्त ।

४. आनि=दूसरों से ।

५. माइआ=माया ।

रज्जब

छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधूसंत ।
रज्जब यह संतोषी चाल, माँगहिं नाहिं मुलक औ माल ।।१।।
जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं ।
रज्जब आपा अरपिदे, तौ आवै हरि माहिं ।।२।।

१. छाजन=वस्त्र । बाछैं=चाहते हैं ।
२. आपा=अहंता, खुदी । अरपिदे=सौंपदे ।

सुन्दरदास

संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौं करिये प्यार ।
कूँजी उनकै हाथ है, सुंदर खोलहिं द्वार ।।१।।
मात पिता सबही मिलैं, भइया बंधु प्रसंग ।
सुन्दर सुत दारा मिलैं, दुर्लभ है सतसंग ।।२।।
मद मत्सर अहंकार की, दीन्हीं ठौर उठाइ ।
सुन्दर ऐसे संतजन, ग्रंथनि कहे सुनाइ ।।३।।
आयें हर्ष न ऊपजै, गयें सोक नहिं होइ ।
सुन्दर ऐसे संतजन, कोटिनु मध्ये कोइ ।।४।।
सुखदाई सीतल हृदय, देखत शीतल नैन ।
सुन्दर ऐसे संतजन, बोलत अंमृत बैन ।।५।।
क्षमावन्त धीरज लिये, सत्य दया संतोष ।
सुन्दर ऐसे संतजन, निर्भय निर्गतरोष ।।६।।

१. पौरिया=द्वारपाल, पहरेदार ।
४. आयें=प्राप्त होने पर ।
६. निर्गत=विगत, रहित ।

घर बन दोऊ सारिखे, सबतें रहत उदास।
सुन्दर संतनि कै नहीं, जिवन मरन की आस ॥७॥
धोवत है संसार सब, गंगा मांहें पाप।
सुन्दर संतनि के चरण, गंगा बंछै आप ॥८॥
संतनि की सेवा कियें, सुन्दर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लड़ाइये, अति सुख पावै बाप ॥९॥

---

७. उदास=उदासीन, तटस्थ।

८. बंछै=चाहती है।

९. आप=स्वयं परमात्मा। लड़ाइये=प्यार करे।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेख।
निःकपटी निरसंक रहि, बाहर भीतर एक ॥१॥
सत्त सब्द सत गुरमुखी, मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़, वह तोड़ै करम अनंत ॥२॥
दाँत रहै हस्ती बिना, पौल न टूटै कोय।
कै कर धारै कामिनी, कै खेलाराँ होय ॥३॥
मतबादी जानै नहीं, ततबादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात ॥४॥

---

१. गिरही=गृहस्थ। भेख=वैरागी।

२. मत=मत्त, मतवाला। पौलगढ़=किले की ड्योढ़ी का फाटक।

३. दाँत रहै हस्ती बिना=यदि हाथी का दाँत हो, पर हाथी न हो; साधना के पक्ष में यह अर्थ होगा, कि यदि इन्द्रियों और मन का दमन न किया हो, केवल वाचनिक साधना हो। खेलाराँ=खिलौना।

४. मतबादी=भिन्न-भिन्न शास्त्रों के सिद्धान्तों की बात करनेवाले। ततबादी=तत्ववादी, शुद्ध आत्मज्ञानी।

सीखत ग्यानी ग्यान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदनी, भीतर काली रात ॥५॥

चरणदास

जग माहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरि-ध्यान।
प्रथिवी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान ॥१॥
सबसूँ रख निरबैरता, गहो दीनता ध्यान।
अंत मुक्ति-पद पाइहौ, जग में होय न हानि ॥२॥
दया, नम्रता, दीनता, छिमा, सील, संतोष।
इनकू लै सुमिरन करै, निस्चय पावै मोष ॥३॥
प्रथिवी पावन होत है, सब ही तीरथ आदि।
चरनदास हरि यौं कहैं, चरन धरै जहँ साध ॥४॥

१. न्यारे=अनासक्त।
३. मोष=मोक्ष।

सहजोबाई

निर्दुन्दी निर्बैरता, सहजो अरु निर्बास।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस ॥१॥
जो सोवैं तो सुन्न में जो जागै हरिनाम।
जो बोलैं तो हरि-कथा, भक्ति करै निहकाम ॥२॥
नित ही प्रेम-पगे रहैं, छके रहैं निजरूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप ॥३॥

१. निर्बास=वासनारहित। निर्दुन्दी=अभेदभाव बर्तनेवाला।
२. सुन्न में=समाधि में।

साध असंगी सँग तजैं, आतम ही को संग।
बोधरूप आनन्द में, पियै सहज को रंग ॥४॥
मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त बिहार ॥५॥
साध मिले गुरु पाइया, मिटि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ समही भयो, कहा गिरवर कहा गेह ॥६॥
साध वृच्छ, बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगति बाग में, नाना फल रहे झूल ॥७॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥८॥

४. असंगी=अनासक्त। संग=आसक्ति। बोध=ज्ञानरूप। सहज को रंग=सहज अवस्था का आनन्दरस।
५. नित्त विहार=सहज समाधि का आनन्द।
६. सम=समत्व।

दयाबाई

दया दान अरु दीनता, दीना-नाथ दयाल।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ नहिं, षट विकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्मभाव-रस-लीन ॥२॥
साध सँग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥३॥

२. षट विकार=मन के छह दोष—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। करि=से। ३. रति=प्रीति

साधू बिरला जगत, में, हर्ष सोक करि हीन ।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ॥४॥
साधसंग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय ।
आधो छिन सतसंग को, कलमष डारै खोय ॥५॥

५. कलमष=पाप ।

पलटूदास

पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइये इक धाप ।
हरिजन आये घर महँ, तो आये हरि आप ॥१॥
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत ।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥२॥
सीस नवावै संत को, सीस बखानौं सोय ।
पलटू जे सिर ना नवै, बेहतर कद्दू होय ॥३॥

१. धाप=टप्पा, एक साँस में जितना लम्बा दौड़ा जा सके; उमंग से उतावला होकर ।
३. बखानौं=असल में उसीको कहता हूँ । कद्दू=कुम्हड़ा ।

सूरातन का अंग

कबीरदास

गगन दमामां बाजिया, पड़्या निसानैं घाव।
खेत बुहार्‌या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥१॥
सूरा तबहीं परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥२॥
अब तौ झूझ्यां हीं बणैं, मुड़ि चाल्यां घर दूरि।
सिर साहिब कौं सोंपतां, सोच न कीजै सूर ॥३॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहि ॥४॥
प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥५॥
भगति दुहेली राम की, जसि खांडे की धार।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरे पार ॥६॥
भगति दुहेली राम की, जैसि अगनि की झाल।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥७॥

---

१. दमामां=नगाड़ा। पड़्या निसानैं घाव=डंके पर चोट पड़ी।
सूरिवैं=शूरवीरों ने।
२. पुरिजा-पुरिजा=टुकड़ा-टुकड़ा।
३. झूझ्यां ही बणैं=जूझना ही होगा।
४. खाला=मौसी। पैंस=पैठे।
७. झाल=ज्वाला। डाकि पड़े=फाँद जाये, लाँघ जाये। कौतिगहार=
तमाशा देखनेवाले।

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उंजियारा होय ॥८॥
खोजी को डर बहुत है, पल-पल पड़ै बिजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेबजोग ॥९॥

९. बिजोग=वियोग ।

दादूदयाल

जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि ।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥१॥
पीछै कौं पग ना भरै, आगैं कौं पग देइ ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौ लेइ ॥२॥
जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥३॥
सिर कै साटै लीजिये, साहिबजी का नांव ।
खेलै सीस उतारिकरि, दादू मैं बलि जांव ॥४॥
दादू मरणा खूब है, मरि मांहै मिलि जाइ ।
साहिब का संग छांड़ि करि, कौन सहै दुख आइ ॥५॥
दादू जे तूँ प्यासा प्रेम का, तौ जीवन की क्या आस ।
सिर कै साटै पाइये, सो भरि पीवै दास ॥६॥

१. सह=स्वामी ।
२. भरै=रखता है ।
३. ऊरण=ऋणमुक्त ।
४. साटै=सौदे में, बदले में ।
५. मांहै=(परमात्मा) में ।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ किसकौं सैंतै जीव ।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ।।७।।

७. सैंतै=बचाकर रखता है ।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

दरिया साँचा सूरमा, सहै सब्द की चोट ।
लागत ही भाजै भरम, निकस जाय सब खोट ।।१।।
सबहि कटक सूरा नहीं, कटक माँहि कोइ सूर ।
दरिया पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर ।।२।।
दरिया प्रेमी आतमा, रामनाम धन पाया ।
निरधन था धनवँत हुआ, भूला घर आया ।।३।।
सूर न जानै कायरी, सूरातन से हेत ।
पुरजा-पुरजा हो पड़ै, तहू न छांड़ै खेत ।।४।।
दरिया सो सूरा नहीं, जिन देह करी चकचूर ।
मन को जीत खड़ा रहै, मैं बलिहारी सूर ।।५।।

२. कटक=सेना । तूर=तुरही, रण में बजाने का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है ।
४. पुरजा-पुरजा=टुकड़ा-टुकड़ा ।

पलटूदास

लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार ।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार ।।१।।
बखतर पहिरे प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान ।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ।।२।।

१. जिकर=नाम-स्मरण, सुरति, लय । छैकार=नष्ट ।
२. बखतर=कवच । कमान=धनुष ।

सोइ सिपाही मरद है, जग में पलटूदास ।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस ।।३।।

दयाबाई

गुरु-सब्दनकूँ ग्रहन करि, बिषयनकूँ दे पीठ ।
गोबिंदरूपी गदा गहि, मारो करमन डीठ ।।१।।
सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कबंद ।
लोक-लाज कुलकानकूँ, तोड़ि होत निरबंद ।।२।।
सूरा सन्मुख समर में, घायल होत निसंक ।
यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक ।।३।।
कायर काँपै देख करि, साधू को संग्राम ।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पावै निज ठाम ।।४।।

१. डीठ=दृष्टि; बुरी नज़र।

२. कबंद=कबंध; बिना सिर का केवल धड़। निरबंद=बंधनरहित, मुक्त।

४. ठाम=स्थान; लक्ष्य ।

सांच का अंग

कबीरदास

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचो होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥१॥
साँई सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जाणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥२॥
प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वारहूँ, जो कोई बोलै सांच ॥३॥
सांच कहूँ तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाइ ॥४॥
कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाहीं सांच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़ै कांच ॥५॥
सांचे स्राप न लागई, सांचे काल न खाइ।
सांचे को सांचा मिलै, सांचे माँहि समाइ ॥६॥
झूठे कों झूठा मिलै, दूणां वधै सनेह।
झूठे कूँ सांचा मिलै, तबही तूटै नेह ॥७॥

---

१. सोहरा=सहल। दीवांन=दरबार, न्यायालय।

२. गुझ=गुह्य, गुप्तभेद या सलाह।

४. पतियाइय=विश्वास कर लेता है। कूकरी=कुतिया। खाइ=काट खाती है।

६. साँचे माहिं समाइ=सत्यरूप परमात्मा में लीन हो जाता है।

७. दूणां=दुगुना। वधै=बढ़ता है। तूटै=टूट जाता है।

सांच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होइ।
पारस में पड़दा रहै, कंचन केहि विधि होइ ॥८॥
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ॥९॥
सांचे कोई न पतीजई, झूठे जग पतियाइ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाइ ॥१०॥
सबसे सांचा है मिला, जो सांचा दिल होइ।
सांच बिना सुख नाहिंना, कोटि करै जो कोइ ॥११॥

८. पड़दा=पर्दा; अन्तर।
९. आप=परमेश्वर।
११. कोटि करै=करोड़ों उपाय करने पर भी।

दादूदयाल

अंतरगति औरे कछू, मुख रसना कुछ और।
दादू करणी और कुछ, तिनकों नाहीं ठौर ॥१॥
सोइ जन सांचे सो सती, साधक सोइ सुजान।
सोइ ग्यानी सोइ पंडित, जो राते भगवान ॥२॥
दादू पद जोड़ै साखी कहै, विषै न छाड़ै जीव।
पानी घालि बिलोइये, क्योंकर निकसै घीव ॥३॥

१. रसना=ज़बान, वाणी। ठौर=विश्वास।
२. राते=अनुरक्त, भक्त।
३. जोड़ै=रचना करता है। घालि=बर्तन में डालकर। बिलोइये=मथे। घीव=घी।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

कानों सुनी सो झूठ सब, आँखों देखी सांच।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह काँच ॥१॥

बीनती का अंग

कबीरदास

तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़करि पकरो बाँहि ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माँहि ॥१॥

करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नाँहि ।
जे दिल खोजौं आपणा, तौ सब औगुण मुझ माँहि ॥२॥

ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥३॥

सुरति करौ मेरे साँइयाँ, हम हैं भवजल माँहि ।
आपेही बहि जाँहिगे, जो नहिं पकरौ बाँहि ॥४॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोंहि ।
तुम देखत औगुण करौं, कैसे भावौं तोंहि ॥५॥

अवगुन मेरे बापजी, बकस गरीब-निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता कों लाज ॥६॥

मन परतीति न प्रेमरस, ना कछु तन में ढंग ।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकरि रहसी रंग ॥७॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥८॥

---

१. धुरही=ठिकाने पर ही ।

२. करता=परमेश्वर ।

३. ताता=गरम । संधि=जोड़ ।

५. औगुण=अपराध, पाप ।

७. रहसी रंग=प्रीति निभेगी ।

दादूदयाल

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनही तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥१॥
राखणहारा राख तू, यहु मन मेरा राखि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साखि ॥२॥
माया विषै विकार थैं, मेरा मन भागै ।
सोई कीजै साँइयाँ, तूं मीठा लागै ॥३॥
साँई दीजै सो रती, तूं मीठा लागै ।
दूजा खारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥४॥
ज्यौं आपै देखै आपकौं, सो नैना दे मुझ ।
मीराँ मेरा मेहर कर, दादू देखै तुझ ॥५॥
नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ ।
साँइयाँ पड़दा दूरि कर, तू ह्वै परगट आइ ॥६॥
जिनकी रख्या तू करै, ते उबरैं करतार ।
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥७॥
दादू दौ लागी जग परजलै, घटि घटि सब संसार ।
हम थैं कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥८॥

---

१. गुन्ही=गुनाह याने अपराध करनेवाला ।

४. खारा=फीका ।

५. ज्यौं आपै देखै आपकौं=जिन अन्तर की आँखों से अपने 'स्वरूप' को देख सकूँ ।

६. रह्या लुकाइ=छिप रहा है ।

८. दौ=जंगल की आग ।

तुमहीं थैं तुम्हकूं मिलै, एक पलक मैं आइ ।
हम थैं कबहु न होइगा, कोटि कलप जे जाइ ।।९।।
खुसी तुम्हारी त्यूँ करौ, हम तो मानी हारि ।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गहिकरि मारि ।।१०।।

---

९. तुमहीं थैं तुम्हकूं मिलै=तुम्हारी कृपा से ही तुमसे हम मिल सकते हैं । जे जाइ=यदि बीत जायें; बीत जाने पर भी ।

१०. भावै बंदा बकसिये=चाहे तो इस सेवक को माफ़ करदो ।

रज्जब

आदि अन्त मधि हम बुरे, हम ते भला न होय ।
रज्जब ज्यूँ साहिब खुशी, सो लच्छन नहिं कोय ।।१।।
तुम जोगी सेवक नहीं, मैं मंदभागी करतार ।
रज्जब गुण नहिं बापजी, बहुत किये विभचार ।।२।।
सकल पतित पावन किये, अधम-उधारनहार ।
बिरद बिचारौ बापजी, जन रज्जब की बार ।।३।।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तौ रज्जब मिलसी आय ।
जथा पवन परसंगि ते, गुड़ी गगन कूं जाय ।।४।।
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव ।
यह तुम्हरा तुमकूं मिल्या, तुम क्यूँ मिले न पीव ।।५।।

---

२. तुम जोगी=तुम्हारे योग्य ।

४. परसंगि=साथ में । गुडी=पतंग ।

५. निपज्या=पैदा हुआ ।

दयाबाई

किस बिधि रीझत हो प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ ।
लहर मेहर जबहीं करो, तबहीं होउँ सनाथ ।।१।।

भवजल नदी भयावनी, किस विधि उतरूँ पार ।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार ॥२॥
तुम ठाकुर त्रैलोक-पति, ये ठग बस करि देहु ।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ॥३॥
नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ ब्रत दान ।
मात-भरोसे रहत है, ज्यौं बालक नादान ॥४॥
लाख चूक सुत तैं परे, सो कछु तजि नहिं देह ।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनो नेह ॥५॥
चकई कल में होत है, भान-उदय आनन्द ।
दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रजचन्द ॥६॥
बड़े-बड़े पापी अधम, तरत लगी न बार ।
पूँजी लगै कछु नन्द की, हे प्रभु, हमरी बार ॥७॥
तुमहीं सूँ टेका लगो, जैसे चन्द्र चकोर ।
अब कासूँ झंखा करौं, मोहन नन्दकिसोर ॥८॥
कब को टेरति दीन ह्वै, सुनो न नाथ, पुकार ।
की स्रवन ऊँची सुनो, की दीन्हीं बिरद बिसार ॥९॥

---

५. चुचुक=चुमकारकर।

६. कल=चैन ।

७. नन्द की=श्रीकृष्ण के अभिभावक नंद बाबा; क्या मुझे तारने में तुम्हारे बाप की पूंजी खर्च होती है ?

८. टेका=टेक । झंखा=झीखना, कुढ़ना ।

९. बिरद=बाना; बड़ा नाम ।

माया का अंग

कबीरदास

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काणि ॥१॥
माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां नां मुई, यूँ कहि गया कबीर ॥२॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढ़ायें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥३॥
माया की झल जग जल्या, कनक कामिणीं लागि।
कहुधौं किहिं बिधि राखिये, रुई-लपेटी आगि ॥४॥
माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगतां के पीछैं फिरै, सनमुख भागै सोय ॥५॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जाकी चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥६॥
आँधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति ॥७॥

---

१. काणि=झूठी मर्यादा, आसक्ति।
३. पोटली=गठरी।
४. झल=ज्वाला।
६. मोदी=व्यापारी।
७. भीति=दीवार।

दादूदयाल

दादू माया का सुख पंचदिन, गर्ब्यो कहा गंवार ।
सुपनें पायौ राजधन, जात न लागै बार ॥१॥
मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण ।
पीछैं ही पछताहुगे, दादू खोटे बाण ॥२॥
दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ ।
दोइ राजी दुख दुंद मैं, सुखी न बैसे कोइ ॥३॥
ज्यौं घुन लागै काठ कौं, लोहै लागै काट ।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥४॥
सांपणि इक सब जीव कौं, आगै पीछै खाइ ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन ऊबरि जाइ ॥५॥
दादू माया कारणि जग मरै, पीव के कारणि कोइ ।
देखौ ज्यौं जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥६॥
सुर नर मुनियर बस किये, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सगल लोक के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥७॥
दादू माया चेरी सन्त की, दासी उस दरबारि ।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूँ लोक मंझारि ॥८॥
दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहँ माया मंगल गाइ ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ॥९॥

---

३. इक राजी=केवल एक राजा का राज्य । दोइ राजी=एकसाथ दो-दो राजाओं के राज्य ।

४. काट=मोरचा, जंग । जाजरा=जर्जर । बारह बाट=सत्यानाश ।

७. मुनियर=मुनिवर । हेठ=नीचे दबी पड़ी है ।

माता नारी पुरिख की, पुरिख नारि का पूत ।
दादू ग्यान बिचारिकरि, छाड़ि गये अवधूत ॥१०॥
सूरजि फटकि पषाण का, तासौं तिमिर न जाइ ।
साचा सूरिज परगटै, दादू तिमिर नसाइ ॥११॥
मूरति घड़ी पखाण की, कीया सिरजनहार ।
दादू साच सूझै नहीं, यूँ डूबा संसार ॥१२॥
माया सांपणि सब डसै, कनक कामणी होइ ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ ॥१३॥

---

१०. अवधूत=विशुद्धात्मा, मुक्तपुरुष ।
११. फटिक=स्फटिक, बिल्लौर ।
१२. घड़ी=बनाई । कीया=रचा ।

मन का अंग

कबीरदास

कबीर मारूँ मन कूँ, टूक-टूक ह्वै जाइ।
विष की क्यारी बोइकरि, लुणत कहा पछिताइ ॥१॥
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥२॥
मैमंता मन मारि रे, घटहीं माँहैं घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दे-दे फेरि ॥३॥
मैमंता मन मारि रे, नान्हां करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ॥४॥
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु-बचन को, ताको मता अगाध ॥५॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माँहि।
कह कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरै नाँहि ॥६॥
पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि-चुगि खात ॥७॥
अपने-अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूँ वार ॥८॥

---

१. लुणत=फसल काटते हुए।
२. आरसी=दर्पण।
३. मैमंता=मतवाला (हाथी)
५. मुरीद=शिष्य। मता=सिद्धान्त।
८. मेरा चोर=मेरा प्रियतम, जिसने मन को हर लिया है।
डारूं वार=न्योछावर करदूं।

कबिरा मनहिं गयंद है, आंकुस दै-दै राखु।
विष की बेली परिहरी, अंमृत का फल चाखु ॥९॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइए, मनहीं की परतीत ॥१०॥

९. विष की बेली=विषय-भोग से आशय है।

दादू दयाल

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१॥
दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनुवां होइ।
यह मन रोकै जतनकरि, साध कहावै सोइ ॥२॥
अगनि धोम ज्यों नीकलै, देखत सबै बिलाइ।
त्यों मन बिछुट्या रांम सौं, दह दिसि बीखरि जाइ ॥३॥
तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुँ दिसि जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै न रांम समाइ ॥४॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ।
रांम नांम रोक्या रहै, नांहीं आन उपाइ ॥५॥
दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्पण देखै मांहि।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नांहि ॥६॥

१. भरतार=स्वामी; परमात्मा से तात्पर्य है।
२. मूल=प्रधान। पंचौं का=पाँच इंद्रियों का।
३. धोम=धुवां। बिलाइ=लुप्त हो जाता है। बिछुट्या=बिछड़ा, अलग पड़ गया।

वरतणि एकै भांति सब, दादू संत असंत।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहँ गच्छंत ॥७॥

७. वरतणि=ऊपरी चेष्टा। मनसा तहँ गच्छंत=वहाँ मन कहाँ जा रहा है यह देखा जाता हैं।

सुन्दरदास

मन कौं राखत हटकिकरि, सटकि चहूँ दिसि जाइ।
सुन्दर लटकि रु लालची, गटकि विषैफल खाइ ॥१॥
सुंदर क्यौंकरि धीजिये, मन कौ बुरो सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौं दाव ॥२॥
सुंदर यहु मन भाँड़ है, सदा भँडायौ देत।
रूप धरै बहु भाँति कै, राते पीरे सेत ॥३॥
सुंदर आसन मारिकै, साधि रहे मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै, मन पकरै कहि कौन ॥४॥
तन कौ साधन होत है, मन को साधन नांहि।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन मांहि ॥५॥
मन ही बड़ौ कपूत है, मन ही महा सपूत।
सुंदर जो मन थिर रहै, तौ मन ही अवधूत ॥६॥
जब मन देखै जगत कौं, जगतरूप ह्वै जाइ।
सुंदर देखै ब्रह्म कौं, तब मन ब्रह्म समाइ ॥७॥

१. सटकि जाइ=हाथ से छूट जाता है।
२. धीजिये=विश्वास करे। गुदरै नहीं=किसी तरह मानता नहीं है।
३. राते पीरे=लाल और पीले।
६. अवधूत=पहुँचा हुआ ब्रह्मज्ञानी।

सुंदर परम सुगन्ध सौं, लपटि रह्यौ निश-भोर।
पुण्डरीक परमातमा, चंचरीक मन मोर ॥८॥

८. भोर=दिन। पुण्डरीक=कमल।

भ्रम-विध्वंस का अंग

कबीरदास

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामें जोति पिछाणि ॥१॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवावण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसैं, तूँ ताही सूँ ल्यौ लाइ ॥२॥
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव ॥३॥
पाहण पूजे हरि मिलै, तौ मैं पूजूँ पहार।
वासे तो चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥४॥
कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्यां हरि मिले, तो अरहट के गलि देख ॥५॥

---

१. दसवाँ द्वार=ब्रह्म-रंध्र से आशय है। देहुरा=देवालय।
२. ल्यौ=लौ, प्रीति।
३. खोटी सेव=झूठी सेवा-पूजा।
५. अरहट=रहँट। गलि=गले में।

दादूदयाल

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गँवाइ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥१॥

---

१. जागह=जगह; तीर्थस्थान।

पत्थर पीवै धोइकरि, पत्थर पूजैं प्राण।
अन्तिकालि पत्थर भये, बहु बूढ़े इहि ग्यान ॥२॥
दादू केई दौड़ें द्वारिका, केई कासी जाहिं।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटहीं माहिं ॥३॥
जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात ॥४॥
जे पहुँचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधौं का एकमत, बिच के बारह बाट ॥५॥

---

२. ग्यान=वस्तुत: मिथ्या ज्ञान।
४. सयाने=सच्चे ज्ञानी, जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है।
५. बारहबाट=भिन्न-भिन्न मतवाले।

रज्जब

सिला सँवारी राज नै, ताहि नवैं सब कोइ।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ ॥१॥
हाथ गढ़े को पूजता, मोल लिये का मान।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान ॥२॥

---

१. राज=शिल्पकार। नवैं=मस्तक झुकाते हैं। सिष-सिल=शिष्य-रूपी पत्थर। पूजि=पूज्य।
२. मान=पूज्य भाव। अघड़=जिसे मनुष्य ने नहीं बनाया। खलक=दुनिया।

मलूकदास

देवल पुजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥१॥

दरिया साहब (बिहारवाले)

परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार।
पंडित पाथर पूजते, भटके जम के द्वार ॥१॥

पलटूदास

जल-पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥१॥
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार ॥२॥
पलटू जहवाँ दो अमल, रैयत होय उजाड़।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार ॥३॥

१. पषान=पाषाण, पत्थर की मूर्ति। सरा=सफल हुआ। देहरा=देवालय।

२. बुड़की=डुबकी।

निन्दा का अंग

कबीरदास

दोष पराये देखिकरि, चल्या हसंत हसंत ।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनका आदि न अंत ॥१॥

निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥२॥

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ ।
ऊड़ि पड़ै जब आँखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥३॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥४॥

अबकै जे सांईं मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ ।
चरनूं ऊपरि सीसि धरि, कहूँ ज कहणा होइ ॥५॥

सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ ।
निंद पराई ना करै, सो कोई परला दीठ ॥६॥

---

१. च्यंति न आवईं=ध्यान में नहीं आते हैं ।

२. सुभाइ=सहजही ।

३. न नींदिये=निंदा न करे । खरा दुहेला=बहुत ही मुश्किल, भारी तकलीफ ।

५. आषौं=कहूँ ।

६. जंबुदीप दै पीठ=जंबूद्वीप (अपने घर से) चलकर । परला=विरला ।

<u>दादूदयाल</u>

दादू जिहि घरि निंद्या साध की, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नांव न ठांव न भूल ॥१॥
दादू निंदक बपुरा जिनि मरै, परउपगारी सोइ।
हमकूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥२॥

---

१. गये समूल=जड़-मूल से नष्ट हो गये।

२. बपुरा=बेचारा। ऊजला=निर्दोष, पवित्र। आपण=स्वयं।

★ चाणक का अंग

कबीरदास

स्वामी हूणां सोहरा, दोद्धा हूणां दास ।
गाडर आणी ऊन कूँ, बांधी चरै कपास ॥१॥
चारिउं बेद पढ़ाइकरि, हरि सूँ न लाया हेत ।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत ॥२॥
बाह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरु नांहि ।
उरझि-पुरझिकरि मरि रह्या, चारिउं वेदन मांहि ॥३॥
कासी कांठै घर करैं, पीवैं निरमल नीर ।
मुकति नहीं हरि-नांव बिन, यूँ कहै दास कबीर ॥४॥

१. हूणाँ=होना, बनना । सोहरा=सरल । दोद्धा=दुर्लभ, कठिन । गाडर=भेड़; अर्थात् आशा यह की थी कि स्वामीजी ज्ञानोपदेश देंगे, पर वे उलटे दूसरों को लूट रहे और मौज कर रहे हैं ।

४. काँठै=किनारे, पास ।

सुन्दरदास

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महाअज्ञ मतिमंद ।
जोई करै उपाइ कछु, सुंदर सोई फंद ॥१॥
बैठ्यो आसन मारि करि, पकरि रह्यो मुख मौन ।
सुंदर सैन बतावतें, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥२॥

★ चाणक=इस शब्द का अर्थ पुरोहित श्रीहरनारायणजी ने 'कोड़े की तरह कड़ा उपदेश' यह किया है ।

२. पकरि रह्यो=ले बैठा है, साध रखा है ।

कोउ करैं पयपान कौं, कौन सिद्धि कहि बीर ।
सुंदर बालक बाछुरा, ये नित पीवहिं खीर ।।३।।
कोऊ होत अलौंनिया, खाय अलौंनो नाज ।
सुंदर करहिं प्रपंच बहु, मान बढ़ावन काज ।।४।।

---

३. बीर=हे भाई । खीर=क्षीर, दूध ।
४. अलौंनिया=नमक न खानेवाला । प्रपंच=ऊपरी दिखाव, पाखंड ।

दया निर्वैरता का अंग

कबीरदास

काजी मुल्लां भ्रंमयां, चल्या दुनीं कै साथि।
दिलथैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥१॥
खूब खांड है खीचड़ी, मांहि पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइकरि, गला कटावै कूंण ॥२॥

१. दीन=धर्म। करद=बड़ी छुरी।
२. खूब=बड़ी बढ़िया, स्वादिष्ट। टुक लूंण=जरा-सा नमक। कूंण=कौन।

दादूदयाल

किससौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहि।
जिसके अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहि ॥१॥
काहेकौं दुख दीजिये, सांईं है सब मांहि।
दादू एकैं आतमा, दूजा कोई नांहि ॥२॥
काहेकौं दुख दीजिये, घटि घटि आतम राम।
दादू सब संतोखिये, यह साधू का काम ॥३॥
दादू मन्दिर कांच का, मर्कट सुनहां जाइ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आपकौं खाइ ॥४॥

४. मर्कट=बन्दर। सुनहाँ—कुत्ता। आप आपकौं खाइ=अपनाही प्रतिबिम्ब देख-देखकर समझते हैं कि दूसरा बंदर और दूसरा कुत्ता आ गया है और अपने आपको काट-काटकर खाते हैं। दूसरों के साथ बैर नहीं, अपने ही साथ बैर करते हैं।

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सो क्यों ढाहिये, साहिब का नीसाण ॥५॥
दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव-रतन ॥६॥
मसीति संवारी माणसौं, तिसकों करै सलाम।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मूसलमान ॥७॥
काला मुँह करि करद का, दिलकैं दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार ॥८॥

---

५. अरस=अर्श, उत्तम स्थान। अजरावर=अजर, जो वृद्ध नहीं होता और अमर; परमात्मा। सो क्यों ढाहिये=उसे अर्थात् जीव के शरीर का क्यों घात करे।

६. जतन=रक्षा। किया=रचा। भानै=तोड़ता है, मारता है।

८. करद=छुरी। मुग्ध=मूर्ख।

शेख फरीद

इक फिका ना गालाइ सभना मै सचा धणी।
हिआउ व कैही ठाहि माणिक सभ अमोलवै ॥१॥
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि म चांगवा।
जे तउ पिरी आसिक हिआउ न ठाहे कहीदा ॥२॥

---

१. एक भी अप्रिय बात मुँह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अन्दर है।

किसीके दिल को तू मत दुखा; हर दिल एक अनमोल रतन है।

२. हर दिल एक रतन है; उसे दुखाना किसीभी तरह अच्छा नहीं अगर तू प्रीतम का आशिक है, तो किसीके भी दिल को न सता।

रज्जब

मुल्ला, मन बिसमिल करौ, तजौ स्वाद का घाट ।
सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट ।।१।।

---

१. बिसमिल=घायल । घाट=दिशा ,ओर ।

मलूकदास

मलुका सोई पीर है, जो जानै परपीर ।
जो परपीर न जानही, सो काफिर बेपीर ।।१।।
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान ।
दास मलूका यों कहै, अपना-सा जिव जान ।।२।।
जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख ।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ।।३।।
कुंजर चींटीं पशू नर, तामें साहेब एक ।
काटै गला खोदाय का, करै सूरमा लेख ।।४।।
मक्का मदिना द्वारका, बद्री अरु केदार ।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार ।।५।।

---

१. पीर=फकीर, सिद्ध । परपीर=दूसरों का दुःख । काफिर=अनीश्वरवादी ।

३. दलिद्दर=दारिद्रय; विपत्ति ।

४. कुंजर=हाथी । खोदाय=खुदा ही ।

कथनी-करणी का अंग

कबीरदास

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ ।
बाँवन आखिर सोधिकरि, ररै ममै चित लाइ ॥१॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँ करि करै पुकार ॥२॥
कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोइ ।
कथनी तजि करनी करै, विष से अंमृत होइ ॥३॥
पद जोरैं साखी कहैं, साधन परि गई रौंस ।
काढा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥४॥
कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोइ ।
सो कहता बहि जानदे, जो नहिं गहता होइ ॥५॥

---

१. आखिर=अक्षर। ररै ममै=रकार और मकार—'राम' यह नाम।
३. लोइ=गोली।
४. जोरैं=रचते हैं।

दादूदयाल

कहिबे सुनिबे मन खुसी, करिबा औरै खेल ।
बातौं तिमर न भाजई, बिन दीवा बाती तेल ॥१॥

---

१. बातौं···तेल=बिना दिये, बत्ती और तेल के कोरी बातों से अंधेरा दूर नहीं होता। तुलसीदास ने भी कहा है, 'निसि ग्रहमध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई।'

दादू बातौं ही पहुँचे नहीं, घर दूरि पयाना।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोइ सयाना ॥२॥
दादू निबरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान ॥३॥
मसि कागद के आसिरे, क्यों छूटै संसार।
रांम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म बिकार ॥४॥
कागद काले करि मुये, केते वेद पुरान।
एकै आखिर पीव का, दादू पढ़ैं सुजान ॥५॥

---

२. पयाना=प्रयाण, कूच।
३. निबारे=बहुत सारे।
५. आखिर=अक्षर।

समता का अंग

दादूदयाल

दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।
दोनौं भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान ॥१॥
दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपणी अपणी ठौर।
दुहुँ बिचि मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥२॥
दादू हिन्दू लागे देहुरा, मूसलमान मीसति।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरन्तर प्रीति ॥३॥

३. देहुरा=देवालय। मसीति=मसजिद। अलेख=जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सुन्दरदास

काहू सौं बांभन कहै, काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसो भ्रम भयौं, योंही मारै गाल ॥१॥
अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं, प्रगट हुतासन होइ ॥२॥
दीपग जोयौ बिप्र घर, पुनि जोयौ चंडाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ, तिमिर गयौं ततकाल ॥३॥
अंत्यज कै जलकुंभ मैं, ब्राह्मण-कलस मँझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया, दुहुँवनि में इकसार ॥४॥

१. बांभन=ब्राह्मण। मारै गाल=झूठमूठ गप लगाता है।

२. दार=लकड़ी। हुतासन=आग।

३. जोयो=जलाया।

हिंदू की हदि छांड़िकै, तजी तुरक की राह ।
सुन्दर सहजै चीन्हियां, एकै राम अलाह ॥५॥

रज्जब

नारायण अरु नगर कै, रज्जब पंथ अनेक ।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक ॥१॥
हिन्दू पावैगा वही, वोही मूसलमान ।
रज्जब किणका रहम का, जिसकूँ दे रहमान ॥२॥
रज्जब हिन्दू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार ।
पखापखी सूँ प्रीति करि, कौन पहूँचा पार ॥३॥

३. पखापखी=पक्षापक्ष; भेद-बुद्धि ।

पलटूदास

हिन्दू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद ।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥१॥

१. दीदबरदीद=नजर के सामने; प्रत्यक्ष ।

चेतावनी का अंग

कबीरदास

कबीर कहा गरबियौ, चाम लपेटे हड्ड ।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, तो भी देबा खड्ड ॥१॥
आजि कि कालिह कि पाँच दिन, जंगल होइगा बास ।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥२॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह ।
रामनाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख खेह ॥३॥
मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार ।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥४॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ ।
कै सेवा करि साध की, कै गोविंद गुण गाइ ॥५॥
यहु तन कांचा कुंभ है, लिया फिरैं था साथि ।
ढबका लागा फूटिगा, कछू न आया हाथि ॥६॥
खंभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधसि बारि ।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥७॥
ऊजल कपड़ा पहरिकरि, पान सुपारी खाहिं ।
एकै हरि का नांव बिन, बाँधे जमपुरि जाहिं ॥८॥

---

१. हैवर=बढ़िया घोड़ा । खड्ड=कब्र से मतलब है ।
३. खेह=धूल ।
५. ठाहर लाइ=अच्छे ठौर पर लगादे ।
६. ढबका=धक्का, ठोकर
७. मानि=मान, अहंभाव ।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥९॥
कबीर नाँव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके-हलके तिरि गये, बूड़े जिनि सिर भार ॥१०॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गई खेत ॥१२॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोंहि।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोंहि ॥१३॥
आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंहासन चढ़ि चले, इक बँधि जात जँजीर ॥१४॥
मैं, भँवरा तोंहि बरजिया, बन-बन बास न लेइ।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि-तड़पि जिय देइ ॥१५॥
चलती चक्की देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोइ ॥१६॥
माली आवत देखिके, कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुनि लईं, कालिह हमारी बार ॥१७॥
कबिरा रसरी पाँव में, कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस-नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन-रैन ॥१८॥

---

९. मेरी मूल बिनास=ममता विनाश का मूल है। पैंषड़ा=पैरों की बेड़ी। पास=फाँसी।

१०. कूड़े=अनाड़ी।

१३. रूँदैं=पैरों से कुचलता है।

१५. बरजिया=मना किया। बेल= काम वासना से तात्पर्य है।

दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन ।
रहिबे को आचरज है, जाइ तो अचरज कौन ॥१९॥
फागुण आवत देखिकरि, बन रूना मन माँहि ।
ऊँचो डाली पात है, दिन-दिन पीले थाँहि ॥२०॥
जो ऊग्या सो आँथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥२१॥
पात पडंता यौं कहै, सुनि तरवर बनराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलै, कहिं दूर पड़ैंगे जाइ ॥२२॥
मेरे वीर लुहारिया, तूँ जिनि जालै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहिं ॥२३॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
नां जांणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥२४॥
काएँ चिणांवै मालिया, लांबी भीति उसारि ।
घर तौ साढ़ी तीनि हथ, घणौं तौ पौणां चारि ॥२५॥
बरियां बीती बल गया, अरु, बुरा कमाया ।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥२६॥
रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार ।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥२७॥

---

२०. रूना=उदास, दुखी । थाँहि=हो रहे हैं ।
२१. जो···आँथिवै=जो उदय हुआ वह अस्त होगा । चिणिया=चिना, बनाया ।
२३. वीर=भाई ।
२५. मालिया=धनी । उसारि=दालान, बरामदा । घर=कब्र या श्मशान से अभिप्राय है ।
२६. बरियाँ=यौवन का अवसर । बुरा कमाया=बुरे कर्म किये । नेड़ा=पास ।

धनी धरमदास

लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह ।
सो मिथ्या कस खोवते, झूठी प्रीति-सनेह ॥१॥
अन्ध भयो सूझै नहीं, फूटि गई हैं चार ।
झटकै पड़ै पतंग ज्यों, देखि बिरानी नार ॥२॥
लचपच दुनियां ह्वै रही, केस भये सब सेत ।
बोलत बोल न आवई, लूटि लिये जम खेत ॥३॥
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल ।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर ॥४॥
जुद्ध रच्यो कुरुछेत्र में, बानन बरसे मेह ।
तिनहीं के अभिमान तें, गिधहुँ न खायो देह ॥५॥
सौ जोजन मरजाद सिंध के, करते एकै फाल ।
हाथन पर्बत तौलते, तिन धरि खायो काल ॥६॥
उपजि-उपजि बिनसत करैं, फिरि फरि जमे-गिरास ।
यही तमासा देखिके, मनुवा भयो उदास ॥७॥
पंख लपेटे सिर धुनै, मनहीं मन पछिताय ।
वह मलयागिरि छाँड़िके, इहाँ कौन बिधि आय ॥८॥

---

१. लख चौरासी=८४ लाख योनियाँ ।
२. बिरानी नार=पराई स्त्री ।
३. लचपच=मग्न, लीन ।
४. एक अंग=एक-सा । निजमूल=अपना असली रंग । काफूर=कपूरा
५. गिधहुँ=गीधों ने भी ।
६. एकै फाल=एक ही छलाँग ।
७. जमेगिरास=मृत्यु का ग्रास, काल के मुँह में जाना ।

उचकन चाहै बल करै, मनहीं मन पछिताय ।
अब सो उचकि न पाइहों, धनी पहूँचो आय ॥६॥

६. उचकन चाहे=कूदना चाहता है। धनी=खेतवाला; काल से आशय है ।

शेख फरीद

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ ।
मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कूं कड़काइ ।
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ ॥
जिंदु वहूटी मरणु वरु लैजासी परणाइ ।
आपण हथी जोलिकै कै गलि लगै धाइ ॥
वालह निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ ।
फरीदा किडी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ ॥१॥

१. वह दिन पहले ही लिख दिया गया था, जिस दिन कि धनवंती का व्याह होना था ।

जिस दूलह के बारे में सुन रखा था, वह अपना मुखड़ा दिखाने आ पहुँचा है । हाड़ों को कड़काकर वह उस बेचारी धनवंती को खींचकर अपने साथ ले जायेगा ।

अपनी जीवात्मा को तू समझादे, कि जो घड़ी नियत हो चुकी उसे बदला नहीं जा सकता ।

जीवात्मा दुलहिन है, और मृत्यु है दूलह; वह उसे ब्याहकर अपने साथ ले जायेगा ।

बिदा होते समय, वह बेचारी किसके गले में अपनी बाहें डालेगी? क्या तुमने सुना नहीं कि वह दुलहिन बाल से भी कहीं अधिक महीन है?

फरीद, जब तेरा बुलावा आये, उठकर खड़ा हो जाना और अपने आपको धोखा न देना ।

फरीदा जां तउ घटण वेल तां तू रता दुनी सिउ ।
मरग सवाई नीहि जां भरिग्रा तां लदिग्रा ॥२॥
देखु फरीदा जु थीग्रा दाड़ी होई भूर ।
ग्रगहु नेड़ा ग्राइग्रा पिछा रहिग्रा दूर ॥३॥
फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिग्रा से लोइण मैं डिठु ।
काजल रेख न सहदिग्रा से पंखी सूइ बहिठु ॥४॥
फरीदा मैं भोलावा पगड़ी मत मैली होइ जाइ ।
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥५॥

---

२. फरीद, जब तेरे कमाने के दिन थे, तब तो तू दुनिया के रंग में रँगा हुग्रा था ।

मौत की नींव मजबूत है; खेप के भरते ही वह लादनहार लेकर चल देगा ।

(मतलब यह है कि ग्राखिरी साँस पूरी हुई कि मौत उसी पल जीव को खींचकर ले जायेगी ।

३. फरीद, देख तो जरा, यह क्या हुग्रा—तेरी दाढ़ी सफेद हो गई;

ग्रागा तेरा नजदीक है, ग्रौर पीछा दूर छूट गया ।

४. फरीद, मैंने उन नयनों को देखा है, जिन्होंने दुनिया को मोह लिया था—

ग्रौर जो काजल की रख भी सहन नहीं करते थे; ग्रब चिड़ियाँ उनमें ग्रपने ग्रंडे रख रही हैं ।

५. फरीद, मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी पगड़ी मिट्टी से मैली न हो जाये;

मेरा बावला जी यह नहीं जानता कि पगड़ी तो क्या मेरे इस सिर को भी यह मिट्टी सड़ा-गलाकर खा जायेगी ।

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूगर भविओम्हि ।
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥६॥
फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि ।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ॥७॥
चलि चलि गईआं पंखिआ जिनी वसाये तल ।
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल ॥८॥
फरीदा ईंट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि ।
केतड़िया जुग वापरे इकतु पइआ पासि ॥९॥
फरीदा किथै तैडे मा पिआ जिन्ही तू जणिओहि ।
तै पासहु ओइ लदि गए तू अजै न पतीणोहि ॥१०॥

---

६. फरीद इन पतली जाँघों व पिंडलियों से कितने ही मैदानों और पहाड़ों को मैंने तय किया ।

पर, आज फरीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैकड़ों कोसों की मंजिल तय करना हो गया ।

७. फरीद, ये (संसारी) सुख खांड से चुपड़े विष के अँकुर हैं;

कुछ तो उनको रोपते हुए ही चल बसे; और कुछ उजड़ गये उन्हें चुनते हुए ।

८. वे सब पक्षी, जिनसे कि तालाब आबाद था, उड़ गये;

फरीद, यह भरा तालाब भी रहने का नहीं, अकेले कमल ही रहेंगे ।

(पक्षी=राजे-महाराजे और उच्च पदाधिकारी । तालाब=संसार । कमल=संतजन ।)

९. फरीद, ईंटें तो होंगी तेरा तकिया, और तू सोयेगा ज़मीन के नीचे; कीड़े तेरे मांस को खायेंगे;

एकही करवट पड़े-पड़े कितने जुग बीत जायेंगे तेरे !

१०. फरीद, कहाँ हैं तेरे माँ-बाप, जिन्होंने कि तुझे जनम दिया था ?

तेरे पास से वे चले गये; आजभी तुझे विश्वास नहीं होता कि दुनिया यह नापायदार है ?

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह ।
जे सउ वर्हिणा जीवणा भी तनु होसी खेह ॥११॥
पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड ।
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड ॥१२॥
फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए ।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए ॥१३॥
फरीदा खिथड़ि मेखा अंगलीआ जिंदु न काई मेख ।
बारी आपो आपणी चले मसाइक सेख ॥१४॥

---

११. शेख फरीद अब बुड्ढा हो गया, और देह उसकी लड़खड़ाने लगी है। वह यदि सौ बरस भी जीये, तोभी उसकी देह को आखिर खाक में ही मिलना है।

१२. जिनके साथ नगाड़े और तुरही बजते थे, जिनके सिर पर राजछत्र रहते थे, और जिनकी विरुदावली चारण गाते थे—
वे कब्रस्तान में सोने के लिए चले गये, और वहाँ गरीब यतीमों की तरह दफना दिये गये।

१३. फरीद, जिन्होंने मकान, हवेलियाँ और ऊँचे-ऊँचे महल बनवाये थे, वे भी चले गये;
वे झूठा सौदा करके गये, और कब्र में डाल दिये गये।

१४. फरीद, अंगरखे में, टिकाऊ बनाने के लिए, बहुत सारे टाँके लगा दिये हैं पर ज़िंदगी में ऐसा कोई टाँका नहीं लगा हुआ है।

गुरु तेगबहादुर

गुन गोबिंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन ।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जल कौ मीन ॥१॥
बिखिअन सिउ काहे रचिओ, निमिख न होहि उदास ।
कहु नानक भजु हरि मना, परै न जम की फाँस ॥२॥

जिहि सिमरत गति पाइए, तिहि भजु रे तैं मीत ।
कहु नानक सुन रे मना, अउधि घटति है नीत ।।३।।
राम गइम्रो रावनु गइम्रो, जाको बहु परिवार ।
कहु नानक थिरु कछु नहीं, सुपने जिउ संसार ।।४।।
चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होइ ।
इह मारगु संसार को, नानक थिरु नहिं कोइ ।।५।।
जो उपजिम्रो सो बिनसिहै, परो आजु कै काल ।
नानक हरिगुन गाइले, छाड़ि सगल जंजाल ।।६।।

दादूदयाल

दादू यहु घट काचा जल भर्या, बिनसत नाहीं बार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ।।१।।
सब जग सूता नींदभरि, जागै नाहीं कोइ ।
आगै पीछै देखिये, परतखि परलै होइ ।।२।।
दादू प्राण पयाण करि गया, माटी धरी मसांणा ।
जालणहारे देखिकरि, चेतै नहीं अजाणा ।।३।।
बाहरि गढ़ निरभै करैं, जीबे के ताईं ।
दादू मांहै काल है, सो जाणै नाहीं ।।४।।
दादू विष अंमृत घट मैं बसै, दून्यूँ एकै ठाँव ।
माया बिषै बिकार सब, अंमृत हरि का नाँव ।।५।।
आपै मारैं आपकौं, आप आपकौं खाइ ।
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ।।६।।

---

२. परतखि=प्रत्यक्ष । परलै=प्रलय, मृत्यु ।

३. मसांणा=श्मशान, मरघट । माटी=मृत शरीर । अजाणा=मूर्ख ।

सुन्दरदास

मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल ।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१॥
चहलपहल-सी देखिकैं, मान्यौ बहुत अन्दोल ।
काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥२॥
सुकृत कोऊ ना कियौ, राच्यौ झंभट झोल ।
अन्ति चल्यौ सब छाड़िकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥३॥
मूंछ मरोरत डोलई, ऐंठ्यौं फिरत ठठोल ।
ढेरी ह्वैहै राख की, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥४॥
माल मुलक हय गय घने, कामिनि करत कलोल ।
कतहूं गये बिलाइकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥५॥
मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल ।
मरद गरद में मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥६॥
ऐसी गति संसार की, अजहूँ राखत जोल ।
आपु मुये ही जानिहै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥७॥
बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठि हृदै की खोल ।
बेगि बिलंब क्यों बनत है, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥८॥
हिरदै भीतर पैठिकरि, अन्तःकरण बिरोल ।
को तेरौ तू कौन कौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥९॥

---

२. अंदोल=आनन्द-कलोल, मौज ।
३. राच्यौ=रंग गया । झोल=टंटा ।
४. ठठोल=हँसी-मज़ाक ।
५. गय=गज ।
६. मोटे मीर=बड़े रईस । डफोल=डींग, आडम्बर । गरद=धूल ।
७. जोल=('सुंदर-ग्रंथावली' के अनुसार) ज़ोर, शक्ति का घमंड ।
८. बांकि=बाँकापन ।

सुन्दर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल ।
कौड़ी सटै न खोइये, मालि हमारौ बोल ॥१०॥
सुन्दर सांची कहत है, मति आनै कछु रोस ।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोहीकौं दोस ॥११॥
बार बार नहिं पाइये, सुन्दर मनुषा देह ।
रामभजन, सेवा, सुकृत, यह सोदो करि लेह ॥१२॥
सुन्दर सांची कहत है, जौ मानै तौ मानि ।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि ॥१३॥
सुन्दर नदी-प्रवाह मैं, मिल्यौ काठ-संजोग ।
आपु आपुकौं ह्वै गये, त्यौं कुटंब सब लोग ॥१४॥
सुन्दर बैठे नाव मैं, कहूँ कहूँ तें आइ ।
पार भये कतहूँ गये, त्यौं कुटंब सब जाइ ॥१५॥
सुन्दर पक्षी बृक्ष पर, लियौ बसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटंब सब जानि ॥१६॥
सुन्दर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार ।
जैसे ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार ॥१७॥
सुन्दर पंजर हाड़ कौ, चाम लपेट्यौ ताहि ।
तामें बैठ्यौ फूलिकै, मो समान को आहि ॥१८॥
सुन्दर अपरस धोवती, चौकै बैठी आइ ।
देह मलीन सदा रहै, ताही कैं संगि खाइ ॥१९॥

---

१०. सटै =मोल पर ।

११. रोस=रोष, क्रोध=नाराज़ी ।

१७. लेत मिलाइ=जोड़ लेता है ।

१८. फूलिकै=मौज में ।

१९. अपरस धोवती=रेशम की धोती, जिसे वैष्णव पहनकर भोजन करते और अपनेको पवित्र मानते हैं ।

सुन्दर देखै आरसी, टेढ़ी नाखै पाग।
बैठ्यो आइ करंक पर, अतिगति फूल्यौ काग ॥२०॥

---

२०. नाखै=अर्थ होता है 'डालता है', पर यहाँ अर्थ है 'बाँधता है'। करंक=लाश। अतिगति=अत्यन्त। फूल्यौ==आनंदित है।

मलूकदास

सुन्दर देही देखिके, उपजत है अनुराग।
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवत खाते काग ॥१॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोर ॥२॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय ॥३॥

---

२. कन=अन्न के दाने। काँकर=कंकड़। पछोर=सूप में रखकर अनाज साफ करना।
३. झांझरा=जर्जरित, बहुत पुराना। परी भहराय=ढह पड़ी; देहपात से अभिप्राय है।

जगजीवनसाहब

भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहूँ होहु सचेत।
साँई पठवा तोहि काँ, लावो तेहि ते हेत ॥१॥
तजु आसा सब झूंठ ही, सँग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारिही, जेहि पर होय सो होय ॥२॥

---

१. पठवा=भेजा, जन्म दिया। हेत=प्रेम।
२. केउ केहू न उबारही=कोई किसी को नहीं उबारता।

कहँवाँ तें चलि आयहू, कहाँ रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ।।३।।
काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय।
रमत रहै तेहि भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय ।।४।।
मृत-मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
गाफिल ह्वै फन्दा पर्‌यौ, जहँ-तहँ गयो बिलाय ।।५।।

---

५. मृत-मंडल = मर्त्यलोक।

सहजोबाई

दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद ।।१।।
सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ ।।२।।
सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन-रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहिं चैन ।।३।।
बैठि बैठि बहुतक गये, जग तरवर की छाँहि।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुड़त जाँहि ।।४।।
झुरि-झुरिके पिंजर भये, रोय गँवाये नैन।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुनै न बैन ।।५।।
जो रोये सूँ बाहुरै, तौ रोवौ दिन-रात।
तन छीजै वह ना मिलै, सहजो कूड़ी बात ।।६।।
देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन-सा, का सूँ तेरा हित्त ।।७।।

सहजो सपने एक पल, बीतैं बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास ॥८॥
जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माँहि ॥९॥
धूवाँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज संजोय।
झांईं माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय ॥१०॥

दयाबाई

दयाकुँवर या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय ॥१॥
जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार ॥२॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलौ, दया होहु हुसियार ॥३॥
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्र-पति, सबकूँ लीले जाय ॥४॥
बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भाँति।
इमि नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै साँति ॥५॥

---

१. जक्त=जगत्।

२. मोती=बूंद से आशय है।

४. नेक=जरा भी। अघाय=तृप्त होता है।

५. बात बसि=हवा से। दीसत=दीखते हैं। साँति=शान्ति।

पलटूदास

जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूँ चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत ॥१॥
पलटू नर-तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥२॥
पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥३॥

---

३. मजीठ=पक्का लाल रंग।

विविध उपदेश का अंग

कबीरदास

जो तोकों काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ।।१।।
दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वाँस से, लोह भसम ह्वै जाय ।।२।।
या दुनिया में आइके, छांड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ।।३।।
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक ।।४।।
उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर ।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर ।।५।।
पढ़ि-पढ़िके पत्थर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट ।
कबिरा अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ।।६।।
देहधरे का दंड है, सब काहू को होय ।
ग्यानी भुगतै ग्यान करि, मूरख भुगतै रोय ।।७।।
जूआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, परनारि ।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवारि ।।८।।

---

३. ऐंठ=अभिमान । पैंठ=हाट ।

५. चीर=कपड़ा । समाता=आवश्यकताभर ।

८. मुखबिरी=भेद की खबर देने का काम, जासूसी । दीदार=ईश्वर का दर्शन ।

राज-दुवारे साधुजन, तीनि वस्तु कों जाय।
कै मीठा, कै मान कों, कै माया की चाय ॥९॥
नाचैं गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत।
कह कबीर क्यों नीपजैं, बीज-बिहूनो खेत ॥१०॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ि बिरानी आस।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरै पिआस ॥११॥
एकै साधे सब सधै, स साधे सब जाय।
जो तूँ सेवै मूल कों, फूलै फलै अघाय ॥१२॥
सब काहू का लीजिये, साँचा सब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिए, कहै कबीर बिचार ॥१३॥
रचनहार को चीन्हिले, खाने कों क्यों रोय।
दिल-मंदिर में पैठकरि तानि पिछौरा सोय ॥१४॥
हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाटि।
कसकरि बाँधो गाठरी, उठकरि चालो बाट ॥१५॥
हंसा बगुला एक-सा, मानसरोवर माँहि।
बगा ढंढोरै माछरी, हंसा मोती खाँहि ॥१६॥
ग्यान-रतन की कोठरी, चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी बचन रसाल ॥१७॥
सहज तराजू आनिकरि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ-रस, जो कोइ जानै बोल ॥१८॥

---

९. चाय=चाह।
१०. नीपजैं=उपजाता है।
१४. तानि पिछौरा सोय=चादर फैलाकर सोजा, निश्चिन्त होजा।
१५. खोटी हाटि=झूठी दूकानदारी।
१६. ढंढोरै=ढूँढ़ता है।
१७. ताल=ताला।

सीतल सब्द उचारिये, अहं आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुझ माहिं ॥१९॥

सब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न बोल ॥२०॥

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोए बास न जाय ॥२१॥

ऊँचे गाँव पहाड़ पर, औ मोटे की बाँह।
ऐसो ठाकुर सेइए, उबरिय जाकी छांह ॥२२॥

जाको राखै साँइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥२३॥

तोहिं पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै, खली भया ना तेल ॥२४॥

कबिरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाइ।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाइ ॥२५॥

कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होइ ॥२६॥

कबिरा सरीर सराय है, भाड़ा देके बस।
जब भटियारी खुस रहै, तब जीवन का रस ॥२७॥

कबिरा छुधा है कूकरी, करति भजन में भंग।
इसको टुकड़ा डारिके, सुमिरन करो निसंक ॥२८॥

---

१९. अहं=अहंकार।
२२. मोटे की बांह=बड़े की शरण। ठाकुर=स्वामी।
२४. पाका सेती=सच्चे के साथ।
२५. साकट=शाक्त; ईश्वर-विमुख से आशय है।
२७. रस=आनन्द, सार्थकता।
२८. छुधा=क्षुधा, भूख। कूकरी=कुतिया।

नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जाग।
और रसायण त्याग के, नाम रसायण पाग ॥२६॥
चलना है, रहना नहीं, चलना बिसवें बीस।
कबिरा ऐसे सुहाग पर, कौन बँधावै सीस ॥३०॥
अपने-अपने चोर को, सब कोइ डारै मारि।
मेरा चोर जो मोहिं मिलै, सर्बस डारूँ वारि ॥३१॥
कहे सुने की है नहीं, देखा देखी बात।
दूलह दुलहिन मिल गये, सूनी पड़ी बरात ॥३२॥
नैनन की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिके, पीतम लेहु रिझाय ॥३३॥

---

२६. निसानी=संकेत। मीच=मौत। पाग=मगन होजा, प्रीति करले।

३०. बिसवें बीस=निश्चित रूप से। ऐसे·····सीस=ऐसे नाशवान विषयों के सुख की खातिर कौन मूर्ख आफत मोल ले।

३२. दूलह दुलहिन=परमात्मा और जीवात्मा से आशय है।

३३. पुतरी=पुतली। चिक=परदा।

गुरु नानकदेव

धृगु तिन्हा का जीविआ जि लिखि-लिखि बेचहिं नाउ।
खेती जिनकी उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ॥
सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि।
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ वादि॥
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मान॥

अकली पढ़िकै बूझिऐ अकली कीजै दानु ।
नानक आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु ।।१।।

---

१. धिक्कार है उनके जीने को, जो प्रभु का नाम लिख-लिखकर बेचते हैं ।

जिनकी खेती उजड़ चुकी उनका क्या काम खलिहान में ?

जिनके अन्तर में सत्य और शील नहीं रहा, उनकी आगे सुनवाई नहीं होगी ।

उसे अक्ल न कहो, जो कि वाद-विवाद में खर्च होती हो ।

अक्ल से तो प्रभु की सेवा की जाती है; अक्ल से सम्मान मिलता है ।

अक्ल से ही पढ़कर समझा जाता है, और उसीके द्वारा सही रीति से दान दिया जाता है ।

नानक कहता है - यही अक्ल के रास्ते हैं, और सब रास्ते शैतान के हैं ।

गुरु अंगद

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ।।
हउमै कित्थुहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ।
हउमै एहो हुकमु है पाइऐ किरति फिराहि ।।
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ।

किरपा करे जि आपणी ता गुरु का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥१॥
सलामु जवाबु दोवै करे मुढहु घुत्था जाइ ।
नानक दोवै कूडीआ थाइ न काई पाइ ॥२॥
चाकरु लगो चाकरी नाले गरबु वादु ।
मल्ला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥

---

१. अहंकार स्वभावतः अहंकार के ही कर्म कराता है।

अहंकार का वह (भव)-बन्धन है, जिससे बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

अहंकार यह उत्पन्न कहाँ से होता है, इसका मूल क्या है, और किस साधन से यह नष्ट हो सकता है?

अहंकार का यह आदेश है कि मनुष्य अपने कृत कर्मों के अनुसार (संसार-चक्र पर) घूमता ही रहे।

अहंकार जीर्ण रोग अवश्य है, पर उसकी एक औषधि भी है, और वह हमारे अन्दर ही है।

यदि परमात्मा अपनी कृपा करदे, तो गुरु का उपदेश सुलभ हो सकता है।

नानक कहता है कि हे मनुष्यो! इसी एक साधन से दुःख का निवारण हो सकेगा।

२. जो मनुष्य मालिक की वंदना करता है और साथ-ही-साथ उसे जवाब भी देता है, या उसके कामों में दोष निकालता है, उसने शुरू से ही गलती की है।

उसकी वंदना और उसकी आलोचना दोनों ही अर्थहीन हैं; उसे, नानक, मालिक के दरबार में जगह मिलने की नहीं।

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ।
नानक जिसनो लग्गा तिसु मिलै लग्गा सो परवानु ॥३॥
जो जीइ होइ सु उग्गवै मुह का कहिआ वाउ ।
बीजै बिखु मंगै अंमृतु देखहु एह निआउ ॥४॥
नानक दुनिआ कीआं वडिआइआं अगी सेती जालि ।
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि ॥५॥

---

३. नौकर नौकरी करते हुए जब गरूर करता है, और झगड़ा भी और बहुत बकझक भी करता है, तो इससे वह अपने मालिक को खुश नहीं करता ।

अपने आपको खोकर यदि वह सेवा करे, तो उसे कुछ आदर मिलेगा ।

नानक, मालिक को वही पा सकेगा, जिसके मनमें उससे मिलने की अभिलाषा होगी; और उसकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी ।

४. जो मन में होता है वही मुँह से निकलता है ।

विष बोता है, और अमृत पाने की आशा करता है, देखो तो इस न्याय को !

५. नानक, दुनिया की बड़ाइयों में लगादे आग ।

इन्हीं आग-लगी बड़ाइयों ने तो उसका नाम बिसार दिया है; इनमें से एक भी साथ जाने की नहीं ।

शेख फरीद

किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि ।
साईं मेरैं चंगा कीता नाही त हंभी दझां आहि ॥१॥

---

१. मैं न कुछ जानता हूँ, न कुछ देखता हूँ—दुनिया यह गोया धधकती हुई आग है;

मेरे साईं ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, नहीं तो मैं भी इसमें जलबल गया होता ।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखु न लेखु ।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां करि देखु ।।२।।
फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ।
आपनड़े घरि जाईए पैर तिन्हादे चुंमि ।।३।।
फरीदा जा लबु त नेहु किआ सबु त कूड़ा नेहु ।
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ।।४।।
फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ।।५।।
फरीदा कंनि मुसला सूफ़ गलि दिलि काती गुड़ु बाति ।
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति ।।६।।

---

२. फरीद, अगर तू तेज अक्ल रखता है, (तो दूसरों के खिलाफ) काले अंक मत लिख ।

अपना सिर झुकाकर तू तो अपने ही गरीवां की तरफ देख । (मतलब यह कि दूसरों के दोष मत देख; तू तो अपने दिल को देख कि उसमें कितने क्या दोष भरे पड़े हैं ।)

३. फरीद, अगर लोग तुझे मुक्कों से मारें, तो बदले में तू उन्हें मत मार; तू तो उनके कदमों को चूमकर अपने घर चलाजा ।

४. फरीद, जहाँ लोभ है, वहाँ प्रेम कहाँ से होगा ? लोभ होगा तो प्रेम वहाँ झूठा होगा ।

टूटे छप्पर के नीचे मेह में तू आखिर कितने दिन गुजारेगा ?

५. फरीद, शाखों और काँटों को तोड़ता हुआ एक जंगल से दूसरे जंगल में तू क्यों भटकता फिरता है ?

रब तो तेरे हिये में बस रहा है; फिर जंगल में उसे तू क्यों ढूंढ़ रहा है ?

६. फरीद, वे कंधे पर मुसल्ला रखते हैं, सूफी की कफनी पहनते हैं, और मीठी-मीठी बात करते हैं, पर दिलों में वे छुरी रखते हैं;

बाहर तो वे चाँदनी फैलाते रहते हैं, मगर दिलों में उनके काली अँधेरी रात झुक रही है ।

फरीद मैं जानिआ दुखु मुझकू दुख सबाइऐ जगि ।
ऊचे चड़िकै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि ॥७॥
कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु ।
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु ॥८॥
निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहवा मणीआ मंतु ।
एत्रै भैणे वैसे करि ता वसि आवी कंतु ॥९॥

---

७. फरीद, मैं समझता था कि दुःख मुझे ही है, मगर दुःख तो सारी ही दुनिया को है;

जब ऊँचे चढ़कर देखा, तब मैंने पाया कि यह आग तो हर घर में लग रही है।

८. वह कौन-सा शब्द है, वह कौन-सा गुण है, वह कौन-सा अनमोल मन्त्र है; मैं कौन-सा भेष धारूँ, जिससे कि मैं अपने स्वामी को बस में करलूँ ?

९. दीनता वह शब्द है; धीरज वह गुण है, शील वह अनमोल मन्त्र है;

तू इसी भेष को धारण कर, तेरा स्वामी तेरे बस में हो जायेगा।

मलूकदास

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस ।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥१॥
भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ॥२॥
सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान ।
साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान ॥३॥

दया-धर्म हिरदै बसै, बोलै अमिरत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥४॥
प्रेम नेम जिन ना कियो, जीता नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥५॥
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूँढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार ॥६॥
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार ॥७॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गये, जबहिं कहा 'कछु देह' ॥८॥

---

५. मैन=कामवासना। छार=धूल।
७. मता=सिद्धान्त।

दादूदयाल

दादू सेवग सांईं बस किया, सौंप्या सब परिवार।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥१॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ॥२॥
सुत बित मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि।
दादू वै निर्फल गये, जैसे नागरबेलि ॥३॥

---

१. सेवग=सेवक।
३. बित=वित्त, धन। मेलि=फेंककर। नागरबेलि=एक लता जिसमें फूल नहीं आते हैं।

दादू पंचौं ये परमोधिले, इनहीं कौं उपदेश ।
यहु मणि अपना हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥४॥
दादू इस संसार में, ये द्वै रतन अमोल ।
इक सांई अरु संतजन, इनका मोल न तोल ॥५॥
सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहि ।
रामविमुख जे दिन गये, सो सालैं मन मांहि ॥६॥
साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहि ।
साहिब राखे ते रहे, दादू निजघर मांहि ॥७॥
दिन दिन लहुड़े हूंहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन तेही बढ़े, जे रहे राम ल्यौं लाइ ॥८॥
दादू सब जग नीधना, धनवंता नहीं कोइ ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै रामपदारथ होइ ॥९॥
दादू केते कहि गये, अन्त न आवै ओर ।
हमहूँ कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥१०॥
मिलैं तो सनमुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होय ।
दादू सुख दुख राम का, दूजा नाहीं कोय ॥११॥

---

४. पंचौं=पांचों इन्द्रियों को । परमोधिले=प्रबोध ले अर्थात् ज्ञान दे दे ।

६. भै=भय ।

८. लहुड़े=लघु, छोटे, अल्पायु । दिन तेही बढ़े=आयु के दिन उन्हींके बढ़े अर्थात् सफल हुए ।

९. नीधना=निर्धन ।

१०. कहसी=कहेंगे । होर=और (पंजाबी प्रयोग)

रज्जब

समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप ॥१॥
ऊपर संत असंत सम, अंतर अंतर होय।
रज्जब पानी ईख का, रूप एक तस दोय ॥२॥
रज्जब बेटी बंदगी, जाई सिरजनहार।
दीन्हीं सो जा जीव कुँ, रिधि सिधि बाँधी लार ॥३॥
नामरदां भुगती नहीं, मरद गये करि त्याग।
रज्जब रिधि क्वाँरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग ॥४॥
जैसे छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूँ राखिये, मन मनसा हरि माँहि ॥५॥
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
वै घर बैठ्या एक कै, तू घर घर फिरहि अनेक ॥६॥
करणी करन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहाँ मिलै रहिमान ॥७॥

---

१. उनहाले=गर्मी में। सियाले=जाड़ों में।
३. बंदगी=भक्ति। जाई=पैदा की गई। लार=साथ।
४. रिधि=ऋद्धि, संपदा। क्वाँरी=कुमारी, अविवाहिता,। पाणि=हाथ।
५. मन मनसा=मन की वृत्ति।
६. सबूरी=संतोष।

बषना

जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम।
मन मनसां हिरदा महीं, बषना यहु विश्राम ॥१॥

सब आया उस एक में, डाही मही घृत सूध।
बषना बाकैं क्या रह्या, जब दुहि पीयां दूध ॥२॥
मोटी देखि बहुत मन मान्यां, दूहतां दूध न आवै।
बषना बहिल भैंसिनैं मूरखि, क्याहनैं पसर चरावै ॥३॥
कण कड़वी भेला चरैं, आंधा बिषई प्राण।
बषना पसु भरम्यां भखै, सुनि भागौत पुराण ॥४॥
पछि पांणी राखै नहीं, जो भावै सो खाइ।
तौ ओषदि गुण नां करै, बषना व्याधि न जाइ ॥५॥
इंहि ओषद तैं साध सब, अनत उधारी देह।
कोइ कुपछ का फेर है, नहीं त ओषद येह ॥६॥
सत जत साँच खिमा दया, भाव भगति पछि लेह।
तौ अमर ओषदी गुण करै, बषना उधरैं देह ॥७॥
बषना हरि जल बरषिया, जल थल भरे अनेक।
करम कठौंरा माणसाँ, रोम न भीगै एक ॥८॥

२. मही = मट्ठा। सूध = शुद्ध।
३. बहिल = बाँझ। क्याहनैं = क्यों, व्यर्थ। पसर = रात को हरी घास जंगल में चराना।
४. कण = अन्न। कड़वी = भूसा। आँधा = मोहासक्त। भरम्यां भखैं = भ्रम में ही फँसे रहते हैं, सार वस्तु ग्रहण नहीं कर पाते।
६. कुपछ = कुपथ्य। फेर = अन्तर, भूल।
७. जत = संयम। खिमा = क्षमा।

सुन्दरदास

सुन्दर अंदर पैसिकरि, दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये, साँई सिरजनहार ॥१॥

१. पैसिकरि = पैठकर।

जिस बंदे का पाकदिल, सो बंदा माकूल।
सुन्दर उसकी बंदगी, साँई करैं कबूल ॥२॥
हर दम हर दम हक्क तूँ, लेइ धनीं का नांव।
सुन्दर ऐसी बंदगी, पहुँचावै उस ठांव ॥३॥
मुखसेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं, सांई की दरगाह ॥४॥
मैं हो अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागैं सदा, क्योंकरि मेला होइ ॥५॥
सुन्दर याही देह मैं, हारि जीति कौ खेल।
जीतैं सो जगपति मिलै, हारैं माया मेल ॥६॥
सुन्दर सौदा कीजिये, भली बस्तु कछु खाटि।
नाना बिधि का टाँगरा, उस बनिया की हाटि ॥७॥
सुन्दर मौन गहे रहै, तबलग भारी तोल।
मुख बोलैं तैं होत है, सब काहू कौ मोल ॥८॥
सुन्दर सुवचन-तक्र तें, राखैं दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही, तुरत फाटि करि जाइ ॥९॥
सूरज के आगै कहा, करैं जींगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर, ताहि दिखावैं पोति ॥१०॥

---

२. बंदगी=सेवा।

४. दरगाह=परमेश्वर का निजस्थान; आत्मस्थिति से आशय है।

५. मेला=मिलन।

९. तक्र=मट्ठा, छाछ। कांजी=नमकीन खट्टा पानी।

१०. जींगणा=जुगनू। पोति=काँच का रंग-बिरंगा गुरिया या मनका।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

दरिया बहु बकबाद तज, कर अनहद से नेह ।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह ॥१॥

जन दरिया उपदेस दे, भीतर प्रेम सधीर ।
गाहक हो कोइ हींग का, कहा दिखावै हीर ॥२॥

दरिया गैला जगत को, क्या कीजै सुलझाय ।
सुलझाया सुलझै नहीं सुलझ-सुलझ उलझाय ॥३॥

दरिया गैला जगत को, क्या कीजै समझाय ।
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय ॥४॥

कंचन कंचन ही सदा, कांच काँच सो काँच ।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच ॥५॥

कानों सुनी सो झूठ सब, आँखों देखी साँच ।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह काँच ॥६॥

साध स्वाँग अस आँतरा, जेता झूठ अरु साँच ।
मोती मोती फेर बहु, इक कंचन इक कांच ॥७॥

पाँच सात साखी कही, पद गाया दस दोय ।
दरिया कारज ना सरै, पेट-भराई होय ॥८॥

मतवादी जानै नहीं, ततवादी की बात ।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात ॥९॥

---

२. सधीर=दृढ़, पक्का । हीर=हीरा ।

३. गैला=गहिला, पागल ।

४. रोग=चेचक से तात्पर्य है । नीसरै=निकलता है । पत्थर पूजन जाय=कहकर देवी पूजने जाते हैं ।

७. आँतरा=अंतर, फर्क ।

९. मतवादी=साम्प्रदायिक लोग । ततवादी=तत्ववादी=ब्रह्मसाक्षात्कार जिन्होंने किया है ।

सीखत ग्यानी ग्यान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदनी, भीतर काली रात ॥१०॥
राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ॥११॥
मुसलमान हिंदू कहा, षट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव ॥१२॥
नारी आवै प्रीत कर, सतगुरु परसै आन।
दरिया हित परदेस दे, माय बहिन धी जान ॥१३॥
नारी जननी जगत की, पाल-पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥१४॥

११. निजभान=आत्म-प्रकाश से आशय है।
१२. षटदरसन=छह शास्त्र। जम का दाव=मृत्यु का आक्रमण।
१३. धी=लड़की।

चरणदास

बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहैं,- छुटकारा नहिं होय ॥१॥
जा घट चिन्ता-नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिर खोय ॥२॥
आसा-नदिया में चलैं, सदा मनोरथ-नीर।
परमारथ उपजै, बहै, मन नहिं पकरै धीर ॥३॥

२. टुक=ज़रा-सा।
३. नहिं पकरै धीर=निश्चल नहीं होता।

अभिमानी मींजे गये, लूट लिये धन बाम।
निरअभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥४॥

चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान ॥५॥

जागै ना पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमिरै ना करतार कूँ, सभी गँवावै मूल ॥६॥

पिछले पहरे जागकरि, भजन करै चित लाय।
चरनदास वा जीव की, निस्चै गति ह्वै जाय ॥७॥

पहिले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान ॥८॥

जो कोइ बिरही नाम के, तिनकूँ कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिये कूँ बींध ॥९॥

सोये हैं संसार सूँ, जागे हरि की ओर।
तिनकूँ इकरस हीं सदा, नहीं सांझ नहिं भोर ॥१०॥

सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात।
साधूजन जागत तहाँ, जहाँ सबन की रात ॥११॥

जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार ॥१२॥

---

४. मींजे गये=धूल में मिला दिये गये। बाम=वामा, स्त्री।
५. आधीनता=नम्रता, निरभिमानता।
६. ताके मुखड़े धूल=उसे धिक्कार है।
७. गति=सद्गति, मोक्ष।
८. भोगी=विषयी जीव।
९. सस्तर=शस्त्र, हथियार। गया बींध=आरपार हो गया।
१०. सोये हैं संसार सूँ=सांसारिक विषय-सुखों की ओर से अचेत। भोर=सवेरा, दिन।
११. कोइक=बिरला ही।
१२. ख्वार=नष्ट।

सहजोबाई

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे-ऊँचे ठाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पांव ॥१॥
नन्हीं चींटी भवन में, जहाँ-तहाँ रस लेइ।
सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर पै डारै खेह ॥२॥
बड़ा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥३॥
भली गरीबी नवनता, सकैं नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार ॥४॥
साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥५॥

---

१. ठाँव=स्थान।
२. कुंजर=हाथी। खेह=धूल।
३. मोटी=भारी।
४. नवनता=नम्रता।
५. घना=बहुत, अधिक।

पलटूदास

वृच्छा फरैं न आपको, नदी न अँचवैं नीर।
परस्वारथ के कारने, संतन धरैं सरीर ॥१॥
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।
पलटू मीठो कूप-जल, समुँद पड़ा है खार ॥२॥

---

१. अँचवैं=पीती हैं।
२. खार=खारा।

खोजत गठरी लाल की, नहीं गाँठि में दाम ।
लोक-लाज तोड़ैं नहीं पलटू चाहै राम ॥३॥
पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम ।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तौ राम ॥४॥
बिन खोजे से ना मिलै, लाख करै जो कोय ।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय ॥५॥
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक ।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥६॥
सुनिलो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान ।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥७॥

३. लाल=रत्न ।

तुलसी साहब

तन मन से साँचा रहै, गहै जो सतगुर बाँह ।
काल कधो रोकै नहीं, दे बताइ धुर राह ॥१॥
अब समझे से का भयो, चिड़ियां चुग गईं खेत ।
चेत किया नहिं आपमें, रहे कुटुंब के हेत ॥२॥
आँखी जाले पड़े, काढ़ै कौन निकारि ।
जब सथिया नस्तर भरै, सुरति-सलाई डारि ॥३॥
जुलमी की जाली पड़े, बड़े-बड़े उमराव ।
दाँव कधी लागै नहीं, भागन कवन उपाव ॥४॥

३. सथिया=जर्राह । नस्तर भरें=चीरा लगाते हैं ।
४. जाली=जाल, फंदा ।

खाय पिये उतना रखै, बाकी रखै न पास।
और आस व्यापैं नहीं, सतगुरु का बिस्वास ॥५॥
विस्वामित्र वसिष्ठ को, भयो परस्पर वाद।
उन तप को कीन्हा बड़ा, इन सतसंग अगाध ॥६॥
जल मिसरी कोइ ना कहै, सरबत नाम कहाय।
यों घुलके सतसंग करै, काहे भरम समाय ॥७॥

---

५. बाकी=अतिरिक्त वस्तु। और आस व्यापैं नहीं=दूसरों की आशा नहीं सताती।

६. उन······अगाध=विश्वामित्र ने तप को बड़ा बताया, और वसिष्ठ ने सत्संग को बड़ा कहा।

७. समाय=पड़े।

संतों का और उनकी बानी का संक्षिप्त परिचय

कबीर साहब

जन्म-संवत्—१४५६ वि०; जन्म-स्थान--काशी; नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित।

ज्ञानभक्ति की सतत साधना करते हुए भी कबीरदास ने अपना घरेलू व्यवसाय नहीं छोड़ा—'हम घर सूत तनहिं नित ताना'। किन्तु कपड़ा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी। ताने-बाने के रूपक के अनेक सुन्दर सबद कबीर के मिलते हैं।

एक लोक-प्रचलित कथा है। कहते हैं कि एक दिन एक थान बुनकर कबीर साहब उसे बाज़ार में बेचने घर से निकले। रास्ते में एक साधु मिल गया और उसने कहा—'बाबा, ला कुछ दे।' इन्होंने आधा थान फाड़कर दे दिया। 'पर इतने से तो बाबा मेरा काम नहीं चलेगा।' कबीर साहब ने दूसरा आधा थान भी उसे दे दिया, और प्रसन्नचित्त घर लौट आये।

आयु का प्रायः सारा ही भाग मोक्षदायिनी काशीपुरी में कबीर साहब ने बिताया, पर मृत्यु के समय वे मगहर चले आये। प्रसिद्ध है कि काशी में प्राण छोड़ने से मुक्ति मिलती है, और मगहर में मरने से नरक। पर कबीर इस लोक-प्रचलित अन्ध धारणा के कायल नहीं थे। उन्होंने कहा—

जो कासी तन तजै कबीरा।
तो रामहिं कौन निहोरा?

कबीर ने जो कुछ भी कहा अपने खुद के जीवित-जागृत अनुभव से कहा, दूसरों के मुँह की कही बात नहीं कही! पढ़-पढ़कर भी कोई बात नहीं कही—

'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

जो कहा अनूठा कहा, किसी का जूठा नहीं ।

कबीर की निपट गहरी और ऊँचे घाट की बानी के विषय में ऊपर-ऊपर से कुछ कहा जा सकता है, तो केवल इतना ही कि—

उस बानी में जगह-जगह पर योगमार्ग का उल्लेख आया है। पर रास्ता वह वैसा टेढ़ा-मेढ़ा और विकट नहीं है । तथापि योगी तो उसे फिसलता हुआ ही दिखाई देता है, योग उसका सहज-ही-सहज है, वैसा ही जैसा कि आत्मा का परमात्मा से मिलन । खुद ही थके-माँदे मार्ग-दर्शन प्रियतम के निकट कैसे पहुँचा सकते हैं ?

भक्ति-मार्ग पर चलने की वह सलाह देती है । कहती है बड़े चाव से, 'जतन करो सखि पिया मिलन का ।' राह रपटीली है, उसपर गिर-गिरकर और उठ-उठकर बड़े जतन से चलना पड़ता है, और जब उस ठौर पर पहुँचते हैं, लाल की लाली में सब कुछ रँगा हुआ दीखता है । सो, 'भक्ति-मार्ग' भी उसका अपना ही है ।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही, उसकी नज़र में, सही रास्ते नहीं जा रहे, दोनों ही अहं या खुदी को गले से लगाये उलटी राह जा रहे थे, तो उन्हें तो उसे फटकारना ही था, उन्हें ही जो वेद और कुरान की गहराई में न पैठकर उनके पन्नों के उलटने-पलटने में अपनी पंडिताई और मुल्लाई को खर्च कर रहे थे ।

सत्य की राह में जो भी आड़े आया, उसे उसने बख्शा नहीं । कर्मकांड, जात-पांत और छूत-छात को चिपटाये जिसे भी उसने देखा गुमराह पाया, और उसे झकझोर डाला । उसके प्रखर प्रवाह में तिनके की तरह बह गये सारे बाह्याचार सारे मिथ्याचार ।

भाषा का उस बानी का 'अधिनायकत्व' स्वीकार करना पड़ा । उसके विद्युत्-वेग को देखकर वह दिङ्-मूढ़-सी हो गई । उसके एक-एक इंगित पर मोहित भाषा ने अपने रूप को काँपते हुए साधा और सँवारा ।

ऐसी है कबीर की अनूठी बानी । कौन और कैसे उसका बखान करे !

गुरु नानकदेव

जन्म-संवत्—१५२६ वि०, कार्तिक पूर्णिमा; जन्म-स्थान—तलवंडी गाँव; जाति—खत्री; पिता—कालूचन्द; भेष—गृहस्थ; निर्वाण-संवत्-१५९५ वि०; निर्वाण-स्थान—करतारपुर

गुरु नानक बचपन से ही बड़े प्रतिभावान और शान्तस्वभाव के थे। पिताने इन्हें पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई। किन्तु इनके चित्त का झुकाव तो एकान्त-सेवन, सत्संग और ईश्वर-चिंतन की ओर सदा रहता था।

पिताने इन्हें विवाह-बन्धन में बाँध दिया। पत्नी ज्यादातर मायके में रहती थी। कालान्तर में इन्हें दो पुत्र हुए—श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। श्रीचन्द ने संन्यास लेकर सुप्रसिद्ध 'उदासी सम्प्रदाय' चलाया।

गुरु नानकदेव ने देश-देशान्तरों में सत्य और ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया और मौज से हरिनाम का अनमोल रस लुटाया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उनके ऊँचे व गहरे उपदेशों को प्रेम से सुना और ग्रहण किया।

'महला १' शीर्षक के जितने भी अनेक रागों में पद 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रहीत हैं वे सब गुरु नानकदेव के रचे हुए हैं। ग्रन्थ साहब के आदि में 'जपुजी' है इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। सिक्खों का 'जपुजी' के प्रति वही श्रद्धा-भाव है जो हिन्दुओं का गीता के प्रति, अथवा बौद्धों का 'धम्मपद' के प्रति है।

'जपुजी' को हरेक सिक्ख और पंजाब और सिन्ध के अनेक हिन्दू भी कण्ठस्थ कर नित्य प्रातःकाल इसका भक्तिपूर्वक मंगल-पाठ करते हैं।

दूसरे अनेक पद भी बड़े ऊँचे और गहरे भावों से भरे हुए हैं। अध्यात्म के विविध अंगों का विशद निरूपण चोट करनेवाली भाषा व शैली में किया गया है।

गुरु अंगद

जन्म-संवत्—१५६१ वि०, वैशाख ११; जन्म-स्थान—हरिके गाँव; पिता—फेरूँ; जाति—खत्री; गुरु—बाबा नानकदेव; भेष—गृहस्थ निर्वाण-संवत्—१६०९ वि०।

पूर्व नाम लहिणा था। उन्होंने मत्ते दी सराय की एक स्त्री के साथ अपना व्याह किया, जिसका नाम खीवी था। कालान्तर में खीवी से एक पुत्री और दो पुत्र हुए। लड़की का नाम था अमरो और लड़कों के नाम थे दासू और दातू।

लहिणा पहले दुर्गा के उपासक थे। जिस घटना से यह दुर्गा की उपासना छोड़कर बाबा नानक के अनन्य भक्त हो गये वह यह है। खडूर में जोधा नाम का एक सिक्ख रहता था। गुरु नानक का वह परमभक्त था। रात में पिछले पहर वह नित्यप्रति 'जपुजी' का पाठ किया करता था। एक रात को लहिणा ने जोधा के मुख से कुछ मधुर कड़ियाँ बड़े ध्यान से सुनीं और वह उधर आकृष्ट हो गये।

गुरु अंगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा में प्रेम का और विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ सलोक तो इनके अनूठे हैं। पद-पद में आत्मानुभूति छलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी है, जो गुरु नानक की बानी से मिल जाती है।

गुरु अमरदास

जन्म-संवत्—१५३६ वि०, वैशाख शु० १४; जन्म-स्थान—बसरका गांव, (अमृतसर के पास); पिता—तेजभान; जाति—खत्री (भल्ला); भेष—गृहस्थ; मृत्यु-संवत्—१६३१ वि०,

अमरदास का विवाह, २४ वर्ष की आयु में, मनसा देवी के साथ हुआ। इनको मोहरी और मोहर नाम के दो पुत्र हुए, और दानी और

भानी नाम की दो पुत्रियाँ। अमरदास पक्के वैष्णव धर्मानुयायी थे। किन्तु इनका कोई गुरु नहीं था, और न किसी ऐसे-वैसे को यह गुरु बनाना चाहते थे। बिना पूरे गुरु के हरि की बाट बताये तो कौन ? सो सद्गुरु की खोज में यह व्याकुल रहने लगे। एक दिन बड़े सवेरे इसी सोच-विचार में पड़े थे कि अपने छोटे भाई के घर से गुरु नानकदेव के एक पद की कुछ कड़ियाँ इन्होंने सुनीं।

गुरु अमरदास की अनूठी साधुता और ऊँची रहनी की अनेक सुन्दर कथाएँ प्रसिद्ध हैं। सत्संग को इन्होंने खूब चेताया, और सैकड़ों साधकों को परमात्मा के नाम और भक्ति का उपदेश दिया।

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा-वंदगी में आठों पहर रहा करते थे, वरदान के रूप में अपनी गद्दी देकर संवत् १६३१ के भादों की पूर्णिमा के दिन वाह गुरु और सतनाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने शरीर छोड़ा। जेठा चतुर्थ गुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहाँ से अब गुरु गोविन्दसिंह तक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परंपरा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वंश से चली।

गुरु ग्रंथ साहिब में महला ३ के अन्तर्गत जितनी भी रचनाएँ हैं वे सब गुरु अमरदास की रची हैं। 'आनन्दु' इनकी सबसे प्रख्यात रचना है। आनन्दु को उन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी 'आनन्दु' रखा था। आनन्दु को आज भी सिक्ख संप्रदाय आनन्द-उत्सवों पर गाया करता है।

गुरु अमरदास के भक्ति-रसपूर्ण पद भी सैकड़ों हैं और वारें भी इनकी कई रागों में हैं। बानी इनकी सरस और ऊँचे घाट की हैं, भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टियों से।

गुरु रामदास

जन्म-संवत्—१५९१ वि०, कार्तिक कृ० २; जन्म-स्थान—लाहौर; पूर्व नाम—जेठा; पिता—हरिदास; जाति-सोंधी खत्री; भेष—गृहस्थ;

मृत्यु-संवत् — १६३८ वि०, भादों शु० ३

गुरु रामदास का विवाह, जब इनका नाम जेठा था, गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी के साथ हुआ था। गुरु अमरदास के यह अनन्य भक्त और पट्टशिष्य भी थे।

गुरु अमरदास की आज्ञा से गुरु रामदास ने जो एक महान् चिरस्थायी कार्य किया, वह था सिक्खों के महान् तीर्थ-स्थान अमृतसर का निर्माण। तालाब के आसपास धीरे-धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दर नगर भी बसने लगा। बाद में इसका भी नाम अमृतसर पड़ गया। उन दिनों गुरु रामदास जिस कुटिया में रहा करते थे, वह आज भी 'गुरु महल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु रामदास ने धर्म-प्रचार के लिए अनेक व्यक्तियों को नियुक्त किया, जिन्हें वे 'मसंद' कहते हैं।

गुरु रामदास ने अपनी गद्दी पर अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुन को बिठाते हुए कहा, "गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊँचे सद्‌गुणों से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊँचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मैं तुझे यह स्थान देता हूँ।"

गुरु रामदास की बानी गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महला ४' के अन्तर्गत संगृहीत है। इनका आसा राग का 'सो पुरख' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'रहिरास' में भी लिया गया है। गुरु रामदास-रचित सूही राग की छंत के चार पदों का उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-संस्कार में करते हैं। इन्हीं गुरु-मंत्रों से फेरे कराये जाते हैं। प्रेम व विरह के अंगों का निरूपण गुरु रामदास ने बड़ा विशद और सुन्दर किया है। बानी इनकी मधुर और बहुत कोमल है।

गुरु अर्जुनदेव

जन्म-संवत् — १६२० वि०, वैशाख कृ० ७; जन्म-स्थान — गोइन्दवाल; भेष — गृहस्थ; मृत्यु-संवत् — १६६३ वि०।

गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बड़े होनहार दीखते थे। इनके नाना गुरु अमरदास की यह भविष्यद्वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई है कि 'यह तेरा दोहित पानी का बोहित होगा।'

गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर में एक सुन्दर मन्दिर बनवाया, जिसे हर-मन्दिर या दरबार साहिब भी कहते हैं। गुरु अर्जुनदेव ने तरन-तारन का भी निर्माण किया, और वहाँ भी एक तालाब खुदवाया। इसी प्रकार व्यास और सतलज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे कर्त्तारपुर कहते हैं।

इनका प्राय: सारा ही जीवन संघर्ष में बीता। गुरु अर्जुनदेव ने अपने सतत संघर्षमय जीवन में भी हमेशा शान्ति, गंभीरता, क्षमाशीलता और तितिक्षा का परिचय दिया। वे धर्म-प्रचार से अन्ततक विचलित नहीं हुए। रचनात्मक कार्य उनका बराबर जारी रहा। अपने जीवन में उन्होंने जो सबसे महान् और चिरस्थायी कार्य किया वह था गुरु ग्रन्थ साहिब का सुन्दर संकलन तथा संपादन।

४३ वर्ष की अल्पायु में गुरु अर्जुनदेव को धर्म की वेदी पर बलि होना पड़ा। उनकी झूठी-झूठी शिकायतें जहाँगीर बादशाह के कानों में पहुँचाई गईं और उन्हें छल-बल से पकड़वाकर बादशाह के आगे पेश किया गया और इस्लाम का विरोधी ठहराया गया। फैसला सुनाया गया कि वे दो लाख रुपये बतौर जुर्माने के दें, और गुरु ग्रन्थ साहिब में से आपत्तिजनक अंश को निकाल दें। उन्होंने दोनों ही बातें नामंजूर कर दीं। उन्होंने कहा कि ग्रन्थ साहिब में ऐसी एक भी पंक्ति नहीं, जिसमें हिन्दू अवतारों और मुसलिम पैगम्बरों की निंदा की गई हो। गुरु अर्जुनदेव को जेलखाने में डाल दिया गया, और वहाँ उन्हें अनेक अमानुषिक यातनाएँ दी गईं।

पाँच दिन कारागार में बीत गये। छठे दिन उन्होंने रावी नदी में स्नान कर आने की इजाजत माँगी। वह मिल गई। अपने साथ पाँच प्यारे सिक्खों को लेकर वे हथियारबंद सिपाहियों की निगरानी में

नहाने के लिए बंदीगृह से निकले। सारे बदन पर फफोले पड़े हुए थे, और पैरों में कई घाव हो गये थे। लेकिन चेहरे पर प्रेम की वही मस्ती खेल रही थी, मानो बंदी-गृह से छूटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे थे। ध्यान में मग्न थे, मुख से 'वाहगुरु वाहगुरु' निकल रहा था। रावी में स्नान किया, और फिर 'जपुजी' का मंगल पाठ, और वहीं पर शान्तिपूर्वक अपना चोला छोड़ दिया।

गुरु अर्जुनदेव की बानी बहुत कड़ी है, ६००० से भी अधिक इनके पद और सलोक मिलते हैं। इनकी 'सुखमनी' नाम की आनन्ददायिनी सरस रचना सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें २४ अष्टपदियाँ हैं। यह इनकी अति लोकप्रिय रचना है। इसके पाठ से चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है। प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् 'सुखमनी' का पाठ किया जाता है। भाषा सरस तथा साधु है। पंजाबी का पुट कम और हिन्दी का रंग अधिक है। इनके कितने ही पद बड़े मधुर और प्रसादगुण से युक्त हैं।

गुरु तेगबहादुर

जन्म-संवत्—१६७९ वि०, वैशाख कृ० ५; जन्म-स्थान—अमृतसर; पिता—गुरु हरगोविन्द; भेष—गृहस्थ; मृत्यु-संवत्—१७३२ वि०, अगहन शु० ५।

औरंगजेब का शासन-काल था यह। धर्मान्तरित करने का आंदोलन उसका कई प्रान्तों में चल रहा था। क़श्मीर भी नहीं बचा। वहाँ के पंडितों ने छह महीने की मोहलत माँगी। कश्मीर के सूबेदार शेर अफ़गान खां ने औरंगजेब की आज्ञा से कश्मीरी पंडितों के आगे यह प्रस्ताव रखा था कि या तो वे सब-के-सब इस्लाम धर्म को ग्रहण करलें, या क़त्ल होने को तैयार हो जायें। यह सुनकर कि गुरु तेगबहादुर ही एक ऐसे महान् वीर-पुरुष हैं, जो इनके शिखा-सूत्र और तिलक की रक्षा कर सकते हैं, उनके कुछ प्रतिनिधि आनन्दपुर पहुँचे। उनकी करुण-कहानी सुनकर गुरु साहब इस निश्चय पर पहुँचे कि धर्म की

खातिर मुझे अपने प्राणों की बलि अब देनी ही होगी। उन पंडितों से कहा आप लोग दिल्ली जाकर बादशाह से कहें—"गुरु नानक के तख्त पर आसीन तेगबहादुर को पहले तुम मुसलमान बनालो, उसके बाद हम सब-के-सब अपने आप इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेंगे।"

रास्ते में कई स्थानों पर ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वे दिल्ली पहुँचे, और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, इस अपराध पर कि इतने दिनोंतक वे कहीं छिपे हुए थे। उसके सामने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा गया। गुरु तेगबहादुर ने बादशाह को यह जवाब दिया—"ईश्वर की मरज़ी से कोई बाहर नहीं जा सकता। अगर उसकी यही मरज़ी होती कि दुनिया में एक ही धर्म होना चाहिए, तो एक ही समय में साथ-साथ इस्लाम और हिन्दूधर्म को वह न रहने देता। उसकी मरज़ी के खिलाफ न मैं जा सकता हूँ, न तुम। मैं इस्लाम को कभी स्वीकार करनेवाला नहीं। ईश्वर के आगे हम सब समान हैं, नाचीज़ हैं, उससे डरो, बहुत जुल्म न करो।"

औरंगजेब आग-बबूला हो उठा। गुरु साहब को उसने जेलखाने में डाल दिया। बाद में कितने ही भय दिखाये गये, कितने ही प्रलोभन दिये गये, पर गुरु सत्य पर वज्र की तरह अडिग रहे। पीछे लोहे के पिंजड़े में उन्हें बंद कर दिया गया। अन्त में, औरंगजेब ने फिर एक बार उन्हें धर्मान्तरित करने का प्रयत्न किया। पर गुरु तो वैसे ही अपने धर्म पर अटल थे। उनका वही जवाब था, प्राण रहते मैं कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। मौत के डर से मैं काँपनेवाला नहीं। मौत को छाती से लगाने के लिए मैं तैयार हूँ। पिंजड़े से उन्हें निकाला गया। उन्होंने स्नान किया, और एक बरगद के नीचे बैठकर जपुजी का पाठ किया। वे शान्त थे, ध्यान-मग्न थे। सैयद् आदम शाह ने जिसके पास क़त्ल का शाही हुक्म था, गुरु तेगबहादुर का सर धड़ से अलग कर दिया।

गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महला' ९ के अन्तर्गत जितने पद और सलोक संग्रहीत हैं वे सब गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं। हिन्दी के अनेक पद-

संग्रहों में जो पद लिये गये हैं, वे गुरु तेगबहादुर के ही हैं, आदिगुरु नानक के नहीं। इनके पदों व सलोकों की भाषा शुद्ध हिन्दी है और वह बहुत प्रांजल और मधुर है। कुछ पद तो इनके सूरदास के पदों से मिलते हैं। भक्ति और वैराग्य का इन्होंने बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। बानी सरल, प्रसादगुणमयी और अतिमधुर है।

रैदास

जन्म-संवत्—अज्ञात, कबीरदास के सम-सामयिक; जन्म-स्थान—काशी; जाति—चमार; गुरु—स्वामी रामानन्द; आश्रम—गृहस्थ।

महात्मा रैदास कबीर साहब के गुरु-भाई थे, स्वामी रामानन्द के शिष्य।

रैदासजी गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उच्चकोटि के विरक्त संत थे। जूते सीते-सीते ही उन्होंने ज्ञान-भक्ति का ऊँचा पद प्राप्त किया था।

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती संतों ने उनको एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप में स्वीकार किया था। स्वामी दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भगवद्-भक्ति के संबंध में तो यहाँतक कहा है:

'आदि मिली जयदेव कूं, रैदास समानीं।'

रैदासजी का प्रभाव दूर-दूरतक फैला हुआ था, और आज भी भारत के अनेक प्रदेशों में उनके पंथ के अनुयायी रविदासी लाखों की संख्या में मिलते हैं। रैदास 'रविदास' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

महात्मा रैदास की बड़े ऊँचे घाट की बानी है। प्रेमपराभक्ति का कई सबदों में बड़ा विशद निरूपण उन्होंने किया है। समता और सदाचार पर बहुत बल दिया है। भक्ति-रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने में आता है। खंडन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य शुद्ध की निर्मल अभिव्यक्ति ही, उनका परम ध्येय था। भाषा ने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के

शब्दों का उनकी बानी में समावेश हुआ है, फिर भी रस एकरस ही सर्वत्र प्रवाहित दीखता है।

दादू दयाल

जन्म-संवत्—१६०१ वि०; जन्म-स्थान—अहमदाबाद (गुजरात); कुल—नागर ब्राह्मण, मतांतर से धुनिया मुसलमान; साधन तथा उपदेश-स्थान—मध्यप्रदेश, जयपुर राज्यान्तर्गत सांभर, आंबेर तथा नराणा ग्राम जयपुर से २० कोस दूर; निर्वाण-सवत्—१६६० वि०।

स्वामी दादू दयाल की जन्म-कथा वैसी ही लोकप्रचलित है, जैसी कि कबीरदासजी की जन्म-कथा। कहते हैं कि लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक बहता हुआ मिला, और उसे उठाकर वह अपने घर ले आया। यही बालक पीछे दादू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२ वर्ष की अवस्था में ही दादूजी सत्संग के लिए घर से निकल पड़े। किन्तु माता-पिता ने पीछा करके इन्हें पकड़ लिया, और इनका विवाह कर दिया। पर संसारी बंधन इन्हें बाँध नहीं सका। सात बरस बाद यह फिर घर से निकल गये। सांभर पहुँचे, और वहाँ धुनिये का काम करने लगे। इसपर से एक मत यह भी हुआ कि दादू दयाल धुनिये जाति के थे।

दादूजी ने १२ वर्षतक सतत सहजयोग की कठिन साधना की। निरन्तर भक्ति-रस में लौ-लीन रहने की अति ऊँची दशा को इन्होंने प्राप्त कर लिया, और यह अन्तर्मुख हो गये।

दादू दयाल की बानी को कबीरदास की बानी के जोड़ की कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सगुणपक्ष में भक्त कवियों में जैसे तुलसी और सूर, वैसे ही निर्गुणपक्ष के संत-कवियों में कबीर और दादू। इनकी प्रेमतत्व की व्यंजना तो बहुत ऊँची और गहरी है इतने ऊँचे घाट की बानी अन्यत्र बहुत कम देखने में आती है। दादू के सबदों में हम अन्तर को वेधनेवाली सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दृष्टि और अमृत-रस से सींचा

हुआ स्वानुभव पाते हैं। अनेक सबदों व साखियों में कबीर का रंग देखने में आता है, पर कहने का ढंग दादू का अपना है। किन्तु कबीर की तरह इन्होंने सत्य की राह से भटकानेवाले पंडितों और मुल्लों पर प्रहार नहीं किये। खंडन-मंडन में इन्हें रुचि नहीं थी। संतमत का मंथन कर सद्यः प्रेम-नवनीत ही दया के समभाव से दादूदयाल ने दोनों हाथों लुटाया है। भाषा बड़ी जानदार है। अनेक जनपदों के शब्दों का मुक्त प्रयोग इन्होंने किया है। फारसी के भी सैकड़ों शब्द इनकी रसवंती बानी में आये हैं। कुछ पद पंजाबी और गुजराती के भी मिलते हैं।

रज्जब

जन्म-संवत्—१६२४ वि०; जन्म-स्थान—सांगानेर; जाति-पठान; गुरु—स्वामी दादूदयाल; भेष-विरक्त; चोला-त्याग—अनुमानतः संवत् १७४० के आसपास, वस्तुतः अनिश्चित; निर्वाण—स्थान-सांगानेर

रज्जबजी के विषय में इतना ही कुछ परम्परा से ज्ञात है कि यह जाति के मुसलमान थे, और सद्गुरु दादू दयाल के एक ही सबद का इन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि विवाह का विचार छोड़कर तत्क्षण सिर पर से मौर व सेहरा उतारकर आंबेर में उनके शिष्य हो गये। ज्ञान के नेत्रों को सद्गुरु के जिस एक सबद ने ही, एक सैन ने ही खोल दिया, वह यह था :

"कीया था कुछ काज को सेवा सुमरण साज।
दादू भूल्या बंदगी, सर्‌यौ न एको काज।।

इसी प्रसंग पर की एक यह साखी भी प्रसिद्ध है :

"रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बाँधा मौर।
आया था हरिभजन कूँ, करै नरक का ठौर।।"

रज्जब की गुरु-भक्ति बड़ी गहरी थी, अनुपम थी। कहते हैं कि दादूजी के अन्तर्गत हो जाने पर रज्जब ने अपने नेत्र सदा के लिए बद कर लिये थे। उनके लेखे में अब संसार में रहा ही कौन था, जिसे वे नेत्र खोलकर देखते ?

रज्जबजी ने दो बड़े ग्रन्थ रचे—'वाणी' और 'सर्वंगी'। साखियों की संख्या ५४२८ हैं, और अंग १९४। इतनी बड़ी संख्या में शायद किसी भी अन्य संत ने साखियाँ नहीं कहीं। पदों की संख्या २१८ है। कवित्त, सवैये, आरिल्ल आदि अनेक छंदों में रज्जबजी ने रचना की है।

भाषा अधिकतर इनकी राजस्थानी है। जान पड़ता है कि संस्कृत का भी इनको ज्ञान था। रचना बड़ी सरस है। कुछ साखियाँ और पद अत्यन्त गूढ़ हैं, जिनका अर्थ लगाना सहज नहीं। सारी ही बानी ऊँचे परमार्थ और गहरे अनुभव में रँगी हुई है। विरह और प्रेम के पद अत्यन्त सरस हैं, जिनमें सूफियों की ऊँची मस्ती व भक्तों की गहरी भावना दोनों एकसाथ दीखती हैं। साखियाँ भी रज्जबजी की ऊँचे घाट की हैं।

बषना

जन्म-स्थान—अज्ञात, अनुमानत: १७वीं विक्रमी शती का प्रथम पाद; जन्म-स्थान—नराणा ग्राम (सांभर से ५ कोस दक्षिण) जाति-मीरासी, मतान्तर से लखारा, कलाल तथा राजपूत; गुरु—स्वामी दादूदयाल; आश्रम—गृहस्थ; रचना-काल—अनुमानत: संवत् १६४० से १६७७ तक; निर्वाण-स्थान—नराणा ग्राम।

यह नराणे ग्राम के निवासी थे, और स्वामी दादू दयाल के प्रधान शिष्यों में इनकी गणना हुई है। यह एक ऊँचे दरजे के गायक थे, कंठ बड़ा सुरीला था। गुरु-भक्ति इनकी बड़ी गहरी थी।

बषनाजी ने ढूँढाहड़ी (राजस्थानी का एक भेद) भाषा में, सीधे-सादे शब्दों में, सत्य का ऊँचा निरूपण और मालिक के विरह का बड़ा सजीव चित्रण किया है। साखियाँ हृदय पर सीधे चोट करनेवाली, और पद अंतर को बिना वाण के भेद देनेवाले हैं। दादू-पंथ के महान् संत रज्जबजी ने भी इनकी साखियों और पदों को अपनी 'सर्वंगी' में लिया है। सुन्दरदासजी भी बषनाजी की वाणी को प्रमाणरूप मानते थे।

सुन्दरदास

जन्म-संवत् १६५३ वि०, चैत्र शु० ९; जन्म-स्थान—द्यौसा (जयपुर राज्यान्तर्गत); जाति—बूसर (खण्डेलवाल वैश्य); गुरु—स्वामी दादू दयाल; भेष—विरक्त; निर्वाण-संवत्—१७४६ वि०

६ या ७ वर्ष की बाल्यावस्था में ही सं० १६५९ में सुन्दरदासजी सद्गुरु महात्मा दादू दयाल के शरणापन्न हो गये थे। उम्र में सबसे छोटे होने के कारण दादूजी महाराज के सब शिष्य इनके प्रति बड़ा स्नेह-भाव रखते थे।

११ वर्ष की अवस्था में सुन्दरदासजी कुछ गुरुभाइयों के साथ विद्याध्ययन करने काशी चले गये। वहाँ इन्होंने संस्कृत-साहित्य का अठारह-उन्नीस वर्ष रहकर गहरा अध्ययन तथा योग-विद्या का अच्छा अनुशीलन किया। भाषा-काव्य-रचना काशी में ही इन्होंने आरंभ की। कहते हैं कि काशी में यह गंगा के उसी असी घाट पर रहा करते थे, जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने शरीर-त्याग किया था।

काशी से विद्याध्ययन करके सुन्दरदासजी सं० १६८२ में सीधे फतेहपुर शेखावाटी आये। यहाँ पर कितने ही वर्ष यह रहे। यहीं योगाभ्यास किया और १२ वर्ष तक घोर तपश्चर्या भी। सत्संग भी इन्होंने यहीं चेताया, और कितने ही छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना भी की। इनकी प्रसिद्धि की सुगंध यहाँ से धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। फतेहपुर इनका साधना-स्थान भी बना, और सिद्ध-स्थान भी।

महात्मा सुन्दरदास पहुँचे हुए परम वीतराग संत थे। निर्मल और ऊँची रहनी थी इनकी। अति दयालु और भगवत्प्रेम में निरन्तर विभोर रहनेवाले यह ऊँचे ज्ञानी तथा हरिभक्त थे।

स्वामी सुन्दरदास सच्चे अर्थ में एक महाकवि थे। केवल काव्य की स्वीकृत दृष्टि से देखा जाये तो शान्तरस के वे एकमात्र आचार्य माने जा सकते हैं। कवि के लौकिक अर्थ में निर्गुणपन्थी संतों में कवि केवल सुन्दरदास को ही कहा जा सकता है। भाषा, भाव, छन्द, अलंकार,

ध्वनि आदि प्रायः सभी काव्यांगों को देखते हुए सुन्दरदासजी एक विशेष स्थान रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं। लिखा सुन्दरदासजी ने बहुत अधिक है। सारी पद्य-संख्या इनकी ३७८८ है।

स्वामी सुन्दरदासजी की बानी क्या भाव, क्या भाषा, क्या अध्यात्म सभी दृष्टियों से अति सरस और सरल तथापि गूढ़ है। संत-साहित्य में इस बानी का एक निराला स्थान है, इसमें संदेह नहीं।

शेख फरीद

जन्म-काल—अनिश्चित; पिता—ख्वाजा शेख मुहम्मद; निवास-स्थान—अजोधन (पाकपट्टन); भेष—गृहस्थ; मृत्यु-काल—९६० हिजरी, २१ रजब (सन् १५५२)

असल नाम इनका शेख बिरहम या इब्राहीम था। पाकपट्टन के आदि फरीद हजरत बाबा फरीदुद्दीन मसऊद शकरगंज के यह वंशज थे, और फरीद इनकी उपाधि थी। इन्हें फरीद सानी अर्थात् फरीद द्वितीय भी कहते हैं। शेख बिरहम कलां, बलराजा, शेख बिरहम और शाह बिरहम नामों से भी यह प्रसिद्ध हैं। आदि फ़रीद की तरह यह भी ऊँची गति के महात्मा थे।

शेख फरीद की बानी बहुत रसभरी, खूब गहरी, और मरम पर सीधे चोट करनेवाली है। उनके कई सलोकों के अंदर गहरा रहस्य भरा हुआ है, और उन्हीं में उसके खोलने की कुंजी भी है। वैराग्य की भी लहरें शेख फरीद ने ऊँची-से-ऊँची उठाई हैं। इनका एक-एक सबद अनूठा है। इनकी प्रेम-प्रीति की मीठी बानी में सूफी-रंग बहुत निखरा हुआ पाया जाता है। भाषा पंजाबी-हिन्दी है, और बहुत मीठी और रसीली है। कहने का ढंग ऐसा, मानों कूजे में समुन्दर भर दिया है।

बाबा मलूकदास

जन्म-संवत्—१६३१ वि०; जन्म-स्थान—कड़ा (ज़िला इलाहाबाद); जाति—कक्कड़ खत्री; पिता—सुन्दरदास; चोला-त्याग-संवत्—१७३९

बाबा मलूकदास बालपन से ही ऊँचे संस्कारी थे। रास्ते में कहीं कुछ काँटा-कूड़ा-कचरा पड़ा देखते, तो उसे उठाकर एक तरफ फेंक देते थे। बचपन से ही मलूकदास साधु-सेवा बड़े प्रेम से किया करते थे। घर में जो कुछ पाते साधुओं के सेवा-सत्कार में लगा देते, मां की राज़ी से और चोरी से भी।

हरि के प्रेम-रस का चसका बालपन से ही बाबा मलूकदास को लग गया था। हरि-रस में सदा मस्त रहते थे। बड़े त्यागी और बड़े ही निःस्पृह। बाबाजी का औलियापना उनकी बानी में पूरा झलकता है।

साखी, सबद (पद) और कुछ कवित्त भी मलूकदासजी ने कहे हैं। अन्य कई संतों की तरह इन्होंने निर्गुण के साथ-साथ सगुण का भी गुण-गान किया है। प्रेम की लहलही लहर और पल-पल में रंग पलटने-वाली दुनिया के तईं मस्तीभरी लापरवाही इनकी साधु-बानी की खास खूबी है। भाषा मिली-जुली साधु-भाषा है। फारसी के अनेक शब्दों और मुहाविरों का भी प्रयोग इनकी बानी में हुआ है।

चरणदासजी

जन्म-संवत्—१७६० वि०, भादों सुदी ३; जन्म-स्थान—डेहरा गांव (मेवात, राजस्थान); जाति—ढूसर बनिया; गुरु—शुकदेवजी; भेष-विरक्त; सत्संग-स्थान—दिल्ली; मृत्यु-संवत्—१८३९ वि०, अगहन सुदी ४।

चरणदासजी का पूर्व नाम रणजीतसिंह था। पिता मुरलीधर का स्वर्गवास हो जाने पर यह अपने नाना के पास दिल्ली में आकर रहने लगे। कहते हैं कि १९ वर्ष की अवस्था में जब यह भगवान् के विरह में एक दिन रो रहे थे, जंगल में शुकदेव मुनि ने इन्हें दर्शन दिया और भगवद्भक्ति का उपदेश किया।

चरणदासजी ने अनेक तीर्थों का पर्यटन किया था। ब्रज में भी

यह कुछ काल रहे थे। श्रीमद्भागवत पर और विशेषकर उसके एकादश स्कन्ध पर इनकी भारी श्रद्धा-भक्ति थी। निर्गुणमार्गी महान् योगी होते हुए भी श्रीकृष्ण पर इनकी अगाध भक्ति थी।

दिल्ली में बैठकर इन्होंने १४ वर्षतक योगाभ्यास किया। दिल्ली को अपना सत्संग-स्थान बनाकर हज़ारों लोगों को इन्होंने हरि-भक्ति, ब्रह्म-ज्ञान और शब्द-योग का समन्वयात्मक उपदेश दिया और चेताया।

चरणदासजी की बानी बड़ी मधुर और सरस है। निर्गुण संतों की तथा सगुण भक्तों की दोनों ही शैलियों का सुन्दर संगम इनकी बानी में मिलता है। भाषा में जो माधुर्य और प्रसाद है वह भी अनूठा है। अनेक पदों में ऊँचा भक्ति-भाव और गहरा रहस्य भरा हुआ है। साखियाँ भी खूब चेतानेवाली हैं। इनकी बानी में भागवत-भक्ति, परमार्थ-ज्ञान तथा शब्द-योग का समन्वयात्मक निरूपण सरस एवं सरल शैली और भाषा में किया गया है। चरणदासजी ने जो कुछ भी कहा 'तन्मय' होकर कहा।

सहजो बाई

जीवन-काल—अनुमानतः सं० १७४० से सं० १८२० वि०; जन्म-स्थान—डेहरा गांव (मेवात, राजस्थान); जाति—डूसर बनिया; भेष-ब्रह्मचारिणी; गुरु—महात्मा चरणदास।

यह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहीं। दिल्ली में यह तथा इनकी गुरु-बहिन दयाबाई महात्मा चरणदास की सेवा में सदा निरत रहा करती थीं। यह उच्चकोटि की साधिका थीं।

कुछ फुटकर पदों और कुण्डलियों के अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचना 'सहज-प्रकाश' है, जिसे रचकर इन्होंने संवत् १८०० में परीक्षितपुर, दिल्ली में समाप्त किया था।

गुरु-महिमा, वैराग-उपजावन, नाम, प्रेम, साध-महिमा आदि अनेक अंगों पर दोहे चौपाइयाँ निरूपण के रूप में इन्होंने रची हैं। गुरु-भक्ति

को सबसे अधिक दृढ़ाया है। पद भी इनके अतिमधुर और सरस हैं। निर्गुण और सगुण दोनों ही पक्षों पर इनके रचे अनेक सुन्दर पद हैं। कृष्ण-भक्ति के कुछ पद तो मीराबाई के कुछ पदों से मिलते हैं। शैली मनोहर और भाषा सरल व प्रांजल है।

दयाबाई

जीवन-काल—अनुमानत: सं० १७५० से सं० १८३० वि०; जन्म-स्थान---डेहरा गाँव (मेवात-राजस्थान); जाति डूसर बनिया; गुरु—महात्मा चरणदास; भेष—ब्रह्मचारिणी; सत्संग-स्थान-- दिल्ली।

यह सहजो बाई की गुरु बहिन थीं। दिल्ली में अपने गुरु चरणदासजी की सेवा में यह भी रहा करती थीं। 'दया-बोध' नामक अपना ग्रन्थ इन्होंने चैत्र सुदी ७, संवत् १८१८ को समाप्त किया था।

'दया-बोध' में दयाबाई ने गुरु-महिमा, सुमिरन, सूरमा, प्रेम, वैराग, साध आदि अनेक अंगों पर दोहे और कुछ चौपाइयाँ लिखी हैं। शैली और भाषा लगभग सहजो बाई की जैसी है। इनका अधिक बल्कि पूरा झुकाव भक्ति की ओर रहा है।

पलटू साहब

जन्म-संवत्— अज्ञात; जन्म-स्थान—नगपुर जलालपुर (ज़िला फ़ैज़ाबाद); जाति—कांदू बनिया; गुरु—गोविन्द साहब; भेष—गृहस्थ, पीछे विरक्त; सत्संग-स्थान—अयोध्या; मृत्यु-संवत् अज्ञात काल—विक्रम की १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान।

जन्म पलटू साहब का नगपुर जलालपुर में हुआ था, पर बाद में रहने लगे थे अयोध्या में। मूंड़ अपने गाँव में ही मुँड़ा लिया था, पर करधनी या जनेऊ अयोध्या में जाकर तोड़ा था। गुरु इनके गोविन्द साहब थे, जो प्रसिद्ध संत भीखा साहब के शिष्य थे।

अयोध्या में पलटू साहब ने सत्संग स्थापित किया, और वहीं अपना

चोला त्यागा। अयोध्या में इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई कीर्ति को देखकर मन्दिरों और अखाड़ों के वैरागी इनसे बहुत जलते थे। पर यह उनकी परवा नहीं करते थे, हमेशा अपनी मौज में मस्त रहते थे। जहाँ एक तरफ़ वैरागी और पंडित इनसे जलते, तहाँ बड़े-बड़े सेठ और अमीर-उमरा इनके द्वार पर बड़ी-बड़ी भेंटें लिये खड़े रहते थे।

कुण्डलियाँ पलटू साहब की बहुत प्रसिद्ध हैं, और बड़े मार्के की है। कई कुण्डलियाँ इन्होंने कबीरदास की साखियों पर भाष्यरूप में लिखी हैं, और कुछ कुण्डलियाँ लोकोक्तियों पर रची हैं।

इसी प्रकार झूलने और अरिल्ल भी इनके खूब मस्तीभरे और ज़ोरदार हैं। सबद भी इनके ऊँचे घाट के हैं। साखियाँ भी सीधे चोट करती हैं। इनके कहने का ढंग कबीर से खूब मिलता है। यह वैसे ही निडर और फक्कड़ आलोचक थे, जैसे कि कबीर साहब। इनकी बानी का सारा रंग और ढंग देखकर जो इनको दूसरा कबीर साहब कहा जाता है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि उसमें प्रायः वैसीही स्पष्टवादिता, वैसीही निर्भीकता, वैसीही सरसता और लगभग वैसीही शैली हम पाते हैं। भाषा अच्छी ज़ोरदार और सरल और सरस है।

धनी धरमदास

जन्म-संवत्—अनुमानतः १४६० वि०; जन्म-स्थान—बांधोगढ़; जाति—बनिया; गुरु—कबीरदास; चोला-त्याग-संवत् अनुमानतः १६०० वि०

धरमदासजी बांधोगढ़ के एक धनी व्यापारी थे। भजन-पूजन, दान-पुण्य और तीर्थाटन पर इनकी भारी श्रद्धा थी। नित्य-नियम से शालिग्राम की पूजा करते और ब्राह्मणों को विधिवत् दान देते थे।

एक बार मथुरा में कबीर साहब से इनकी भेंट हुई। मूर्ति-पूजा और तीर्थयात्रा का कबीर साहब ने खंडन किया, और निर्गुण निराकार की उपासना का मंडन। कबीर साहब की बात इनके मन में कुछ-कुछ तो जगी, पर पूरी तरह नहीं। दूसरी बार धरमदासजी कबीर साहब से

काशी में जाकर मिले, और संत-मत का पूरा उपदेश पाया। सतगुरु ने उनके अन्तर पर पड़ा परदा हटा दिया।

प्रेम-प्रीति, विरह और शब्द-रहस्य इन अंगों में धरमदासजी ने सद्‌गुरु कबीर की बानी के साथ तादात्म्य-सा किया है। बानी बड़ी सरल और सरस है। कठोरता का कहीं लेश भी नहीं। खंडन-मंडन के फेर में न पड़कर संत-मत की सात्विकी साधना से उपलब्ध प्रेम-तत्व का विशद निरूपण किया है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना बड़ी सुन्दर तथा मार्मिक है। बानी बड़े ऊँचे घाट की बानी है। कबीर साहब की उज्ज्वल प्रसादी का इस अति गहरी बानी को विमल प्रतिबिम्ब कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

दरिया साहब (मारवाड़वाले)

जन्म-संवत्—१७३३ वि०; जन्म-स्थान—जैतारन गाँव (मारवाड़) जाति—धुनियां (मुसलमान); गुरु—संत प्रेमजी; चोला-त्याग—संवत् १८१५ वि०।

यह सात साल के थे, जब इनके पिता की मृत्यु हुई। रैन नाम के एक गाँव में, जो मेड़ता परगने में था, इनके नाना-नानी ने इनको पाला-पोसा। यह पढ़े-लिखे नहीं थे। ईश्वर-भक्ति की पिपासा इनको बालपन से ही थी। कितने ही मुल्लों व पंडितों के द्वार खटखटाये पर भक्तिरस का भेद कहीं भी नहीं पाया। वे सबके सब छूछे घड़े थे। अन्त में दरिया साहब प्रेमजी महाराज के पास पहुँचे, जो एक पहुँचे हुए संत थे। यह खियानसार गाँव (बीकानेर राज्य) में रहते थे, और स्वामी दादूदयालजी के शिष्य थे। प्रेम का असली मार्ग उन्होंने इन्हें पकड़ा दिया। उनके चरणों में बैठकर दरिया साहब ने भरपूर भक्ति-रस पिया और पिलाया। जिस परमतत्व के विरह में बरसों से तड़प रहे थे, वह इन्हें सहज ही मिल गया, भेद पा लिया।

महात्मा दादूदयाल तथा अन्य अनेक संतों की तरह दरिया साहब

ने भी विविध अंगों पर साखियाँ कही हैं। प्रेम और विरह के पद भी इनके गहरे और टकसाली हैं । कहने का ढंग सुलझा हुआ, और भाषा सरल व मधुर है । शब्द-अभ्यासी संतों की बानियों में दरिया साहब की बानी ने खासा स्थान पाया है ।

दरिया साहब (बिहारवाले)

जन्म-संवत् -- १७३१ वि०; जन्म-स्थान—घरकंधा (जिला आरा) जाति—धर्मान्तरित मुसलमान (पूर्वजाति क्षत्रिय) भेष—गृहस्थ, वस्तुत: विरक्त; मृत्यु-संवत्—१८३७ वि० (भादो बदी ४)

दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे, जो वहाँ से उठकर बिहार में आ बसे थे ।

नौ बरस की उम्र में इनका विवाह हो गया । पर पन्द्रह बरस की उम्र में ही तीव्र वैराग्य हो जाने के कारण इन्होंने स्त्री का परित्याग कर दिया, गृहस्थी में नहीं फँसे । सहज साधना करते-करते इन्होंने ज्ञान और भक्ति का पूरा प्रकाश बीस बरस की अवस्था में ही पा लिया । तीस बरस के जब हुए, तब 'तख्त' पर बैठ गये । सत्संग कराना और सोते हुए को जगाना-चेताना शुरू कर दिया । कबीरदास की तरह दरिया साहब ने भी अवतार, मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, जात-पांत वगैरा का खंडन किया है । कबीरदास के मत और तत्वज्ञान का इनपर पूरा प्रभाव पड़ा था, और कदाचित् इसीलिए इन्हें कबीर साहब का अवतारतक कहा जाता है ।

दरिया साहब की रची २० पुस्तकों का पता चला है, किन्तु प्रकाश में केवल 'दरिया सागर' और 'ज्ञानदीपक' ये दो ही पुस्तकें आई हैं । दरिया साहब की बानी में हम प्रत्यक्ष अनुभूति की स्पष्ट झलक पाते हैं । 'छपलोक' अर्थात् सत्पुरुष के रहस्य-लोक या ब्राह्मी स्थिति का वर्णन ऐसा सजीव इन्होंने किया है, मानों उसे अपने सामने देख रहे हों । बाह्य-जगत् तथा अन्तर्जगत् को इन्होंने एक पारदर्शी की दृष्टि से

देखा था। विनय और विरह के पदों में गहरे भावों को सरल व कोमल भाषा में व्यक्त किया है।

जगजीवन साहब

जन्म-संवत्—१७२७ वि०; जन्म-स्थान—सरदहा गाँव (जिला-बाराबंकी; जाति—चन्देल क्षत्रिय; गुरु—बुल्ला साहब; भेष--गृहस्थ; मृत्यु-संवत्--१८१० वि०।

जगजीवन साहब के पिता खेती-बाड़ी करते थे। यह भी बचपन में अपने घर के गाय-बैलों को चराने ले जाया करते थे। पर इनका मन संसारी कामों में लगता नहीं था। बालपन से ही परमार्थ और सत्संग की ओर इनके चित्त का झुकाव था।

जगजीवन साहब ने गृहस्थ-आश्रम में ही रहकर हज़ारों को परमार्थ का गहरा उपदेश दिया। इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई महिमा को देखकर सरदहा गाँव के लोगों के मन में ईर्ष्या होने लगी। इसलिए सरदहा को छोड़कर यह वहाँ से छह मील दूर कोटवा गाँव में जाकर बस गये। कोटवा में जगजीवन साहब की आज भी समाधि और गद्दी है, जहाँ हर साल उनकी याद में एक बड़ा मेला लगता है। कोटवा-शाखा के सतनामियों का यह बहुत बड़ा स्थान है।

इनकी बानी बड़ी सरस और ऊँचे घाट की है। प्रेम व विरह और विनय का निरूपण कई पदों में बड़ा सजीव किया है। सदाचारी जीवन पर बहुत ज़ोर दिया है। इनकी बानी में आत्मानुभूति की स्पष्ट झलक मिलती है। जगजीवन साहब की बानी बहुत निर्मल और सुलझी हुई है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और अच्छी सरसता है।

तुलसी साहब

जन्म-संवत्—१८१७ वि० (मतान्तर से संवत् १८४५); जन्म-स्थान—अज्ञात; सत्संग-स्थान—हाथरस (उत्तरप्रदेश) के समीप जोगिया

गाँव; भेष-विरक्त; मृत्यु-स्थान---१८९९ वि० (मतान्तर से सं० १९००, जेठ सुदी २)।

तुलसी साहब का परिचय निश्चित रूप से कुछ भी नहीं मिलता है। इतना ही पता चलता है कि हाथरस के आसपास और दूर-दूर भी काला कम्बल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये यह चले जाया करते थे। यह एक अलमस्त पहुँचे हुए संत थे।

तुलसी साहब ऊँची रहनी के संत थे, भगवद्विरह और भगवत्प्रेम में हर हमेशा मस्त रहनेवाले। शब्दयोग के गहरे साधक थे। स्वभाव के बड़े फक्कड़ थे।

तुलसी साहब का कोई गुरु नहीं था। पर सद्गुरु की तलाश अथवा कहना चाहिए कि सद्गुरुरूप अपने 'स्वरूप' की ही तलाश में वे विरहातुर रहा करते थे, जैसा कि उनकी इस कड़ी से प्रकट होता है :

'मिलै कोई संत फिरौं तेहि लारे।'

तुलसी साहब की रचनाओं के रूप में तीन ग्रन्थ मिले हैं—'घट समायन' 'रत्न-सागर' और 'शब्दावली'।

तुलसीदास की अतिसरस रचना 'शब्दावली' में मिलती है। विरह और प्रेम के पद इनके बड़े मर्मभरे और सरस हैं, जो अन्तर पर सीधे चोट करते हैं। 'गैब-घर' की झिलमिल झाँकी का, वहाँ की जगमग जोति का और मुरली की अनहद तान का वर्णन बड़ा सरस इन्होंने किया है।

रेखते, गजलें, अरिल्लें, कुण्डलियाँ, झूलने, सवैये, कवित्त, लावनी, आदि कितने ही छन्दों में तुलसी साहब ने सरस रचना की है। पद तो अनेक रागों में हैं ही।

भाषा बड़ी मीठी और ज़ोरदार है, फारसी शब्दों का भी कितने ही पदों और दूसरे छन्दों के बहुलता से प्रयोग किया गया है।

卐